"श्री चम्पावती जैन पुस्तकमाला" का पु

ॐ

वन्दे जिनवरम्

आर्यसमाज के एक सौ प्रश्नों का उत्तर !

लेखकः—

श्री पं० अजितकुमार शास्त्री,

मुल्तान नगर

प्रकाशकः—

वेद-विद्या-विशारद पं० मंगलसैन जैन

मंत्री—प्रकाशनविभाग

"श्री चम्पावती जैन पुस्तकमाला"

अम्बाला छावनी

प्रथमवार २०००

सन् १९३१ ई०

मूल्य तीन आना

शुद्धाशुद्धि-पत्र
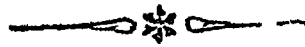
पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	४	विजितकर्माणतिजालो	विजितकर्मारातिजालो
६	७	होगा	होंगे
६	८	उसकी	उनकी
२२	१८	होने के कारण	होने से
२६	१७	जङ्गल	जगत
२८	५	अमूर्तिक साकार	मूर्तिक साकार
६७	२२	इससे समय	इस समय
७५	१३	वाशिंगटन में	वाशिंगटन
८०	६	एक लाख मील से	कई एक लाख मील से
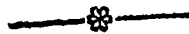
* प्रकाशकीय वक्तव्य *
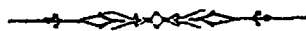
विचारशील पाठकों! विचार परिवर्त्तन एवं विचार दृढ़ता के लिए एक दूसरों के शास्त्रों का अवलोकन एवं उनका परिशीलन विचारशील भारतियों का एक आवश्यकीय कर्त्तव्य रहा है तथा रहेगा। एक दूसरों के शास्त्रों का अवलोकन एवं परिशीलन जिस को कि विचार परिवर्त्तन और विचार दृढ़ता का एक स्तम्भ माना गया है सद्भाव और गवेषणात्मक दृष्टि से होना चाहिये। यदि इस कार्य में सद्भाव और गवेषणात्मक दृष्टि का अभाव होजाता है तो वह उद्देश्य जिसके लिए कि यह कार्य किया जाता है कदापि पूर्ण नहीं होता। स्वामी कर्मानन्दजी ने जो संसार के समस्त जैनियों से १०० प्रश्न किये हैं इस से स्पष्ट है कि उन्होंने जैनशास्त्रोंका अवलोकन करते समय उपर्युक्त बातों का ध्यान नहीं रक्खा। यदि ऐसा होता तो वे इस परिणाम पर कदापि नहीं पहुँचते। प्रश्न करना कोई अनुचित बात नहीं, किन्तु किसी भी तत्व की सूक्ष्मता तक पहुंचने के लिए वह आवश्यकीय भी है, लेकिन वह जिज्ञासु की दृष्टि से होना चाहिये।

स्वामी जी के प्रश्नों में इस दृष्टि का अभाव है। यदि ऐसा न होता तो उन को न तो संसार के समस्त जैनियों से

प्रश्न करने की आवश्यक्ता थी और न छपवाने की! उनको तो किसी विद्वान् के समक्ष लिखित या मौखिक रूपमें इन प्रश्नों को रख कर उन के हल करने का प्रयत्न करना था। ऐसा करने से उत्तर भी शीघ्र मिल जाते और राष्ट्रका द्रव्य भी जो कि दोनों तरफ़ से प्रश्नों और उत्तरों के छपवाने वग़ैरा में ख़र्च हुआ है व्यर्थ बरबाद न होता। यदि ऐसी अवस्था में भी स्वामी जी को सन्तोष न होता तो वे जैसा चाहते कर सकते थे।

यद्यपि हमारे लिये यह कोई ज़रूरी नहीं था कि हमभी स्वामी जी के प्रश्नों का उत्तर छपवा कर प्रकाशित करते, क्यों कि प्यासा कुँए के पास जाता है न कि कुंआ प्यासे के। दूसरी बात यह है कि जब कि यह सिद्धान्त है कि "प्रश्नों के होनेसे ही किसी विषय की असारता नहीं होती" तब जैनधर्म पर स्वामी जी के प्रश्नों का सद्भाव ही किसी भी तरह उस का खण्डन नहीं कर सकता, तथापि स्वामी जी ने प्रश्नों के द्वारा ही साधारण जनता में जैनधर्म के सम्बन्ध में क्षोभ उत्पन्न करने का प्रयास किया है। कहीं उस में भद्र जनता भ्रम में न पड़ जाय; एतदर्थ ही यह पुस्तक प्रकाशित की जाती है। आशा है विचारशील पाठक प्रश्नों और उत्तरों को पढ़कर यथार्थ अयथार्थ का निर्णय करेंगे।

विनीत—

मङ्गलसैन जैन,

मन्त्री—प्रकाशन विभाग जैन-शास्त्रार्थ सङ्घ,

चम्पावती जैन पुस्तकालय, अम्बाला छावनी।

आद्य निवेदन !

प्रियवर महानुभावो ! आज से लगभग पचास वर्ष पहले स्वामी दयानन्द जी सरस्वती ने आर्यसमाज की नीव डाली थी। वेदों को मान्य करते हुए आपने उन पर प्राचीन भाष्यों के विरुद्ध एक नवीन भाष्य लिखा जिसको कि आप अपने जीवनकाल में पूरा न कर सके। आर्यसमाज के लिये जो आप ने सब से उपयोगी ग्रन्थ लिखा उसका नाम सत्यार्थप्रकाश है। यह कहने में हमको कोई संकोच नहीं कि स्वामीजी का लिखा हुआ सत्यार्थप्रकाश तो सं० १८७५ में ही छपा था, जिस समय कि वे स्वयं जीवित थे और उसका पूर्ण अधिकार राजा जयकृष्णदास को बेच चुके थे। स्वामी जी के स्वर्गवास हो जाने पर सत्यार्थप्रकाश के अब तक दूसरे आदि जितने भी ऐडीशन हुए है वे असली नहीं हैं किन्तु स्वामीजी के नाम पर आर्यसमाज बराबर काट छांट करके छपाता आरहा है। फिर भी स्वामी जी ने सत्यार्थ-प्रकाश में अन्य धर्मों के समान जैनधर्म का भी १२ वें समुल्लास में जो खण्डन करने का कष्ट उठाया है उसमें आपने बहुत कुछ असह्य अनुचित अपशब्दों का व्यवहार भी किया है। उसके उत्तर में सत्यार्थदर्पण नामक पुस्तक लिखी गई,

जो कि अब दूसरी बार इसी पुस्तक के प्रकाशक द्वारा प्रकाशित हुई है।

अभी कुछ दिन पहले अजमेर आर्यसमाज के नेता श्रीमान् स्वामी कर्मानन्द जी सरस्वती ने एक ट्रैक्ट लिख कर प्रकाशित किया है जिसका नाम "भूमण्डल के समस्त जैनियों से हमारे १०० प्रश्न" रक्खा है। यह ट्रैक्ट कब प्रकाशित हुआ, इसका ठीक पता नहीं; क्योंकि ट्रैक्ट पर संवत् नहीं छपा है। इस ट्रैक्ट में लेखक महाशय ने जैनियों से पूरे एक सौ प्रश्न किये हैं।

जैनसमाज इस समय दिगम्बर और श्वेताम्बर ऐसे मुख्य दो विभागों में बँटा हुआ है जिसको कि स्वयं कर्मानन्दजी भी अच्छी तरह समझते हैं। ट्रैक्ट का नाम यद्यपि 'भूमण्डल के समस्त जैनियों से १०० प्रश्न' रक्खा है जिसके भीतर श्वेताम्बर सम्प्रदाय भी सम्मिलित होजाता है, किन्तु यह नाम सिर्फ दिखलाने के लिए है। क्योंकि ये सौ प्रश्न केवल दिगम्बर जैन समाज से ही किये गये हैं; जैसाकि आपने टाइटिल पत्र के दूसरे पृष्ठ पर 'इन प्रश्नों का संबन्ध विशेषतया दिगम्बर सम्प्रदाय से है', इस नोट द्वारा स्पष्ट कर दिया है। इस कारण इस ट्रैक्ट का नाम आप यदि 'भूमण्डलके समस्त दिगम्बर जैनियों से हमारे १०० प्रश्न' रखते तो पुस्तक का नाम तथा आपका अभिप्राय सच्चा प्रगट हो जाता। अस्तु।

आपने श्वेताम्बर सम्प्रदाय के विषय में बारह प्रश्न किये हैं जिनका कि आर्यसमाज से कोई सम्बन्ध नहीं। शायद

आपने दिगम्बर श्वेताम्बर सम्प्रदायों में भेदभावको उत्तेजना देने के लिये किये हैं। अस्तु। हमने उन का भी उत्तर लिख दिया है।

लेखक ने एक सौ की संख्या पूरी करनेके लिये ६४—८६ वें प्रश्नके समान कुछ व्यर्थ प्रश्न किये हैं। अनेक प्रश्न ऐसे हैं जो कि दूसरे प्रश्नों में शामिल हो जाते है। इस के सिवाय अनेक प्रश्न ऐसे ऊटपटांग है जोकि प्रश्नकर्त्ता की जैन सिद्धान्त सम्बन्धी भारी अनभिज्ञता को प्रगट करते है।

इस पर भी लेखक दि० जैन समाज को लक्ष्य करके बड़े अभिमान के साथ लिखते है कि "बीमारीको अधिक बढ़ने देना उचित नहीं समझते; इसलिये विवश होकर औषधरूप क़लम हाथ में लेते हैं। रोगी घबरावे नहीं, हम नई सभ्यतानुसार शान्तिपूर्वक इलाज करेंगे" स्वामी जी का यह अभिमानपूर्ण वाक्य आंख के उस डाकृर के स्व-प्रशंसित वाक्य के समान है जो कि स्वयं आँख के डबलरोग से घिरा हुआ होने पर भी दूसरे की आँख के रोग को बहुत शीघ्र आराम कर देने की डींगें मारता हो। लिखना पड़ता है कि पहले स्वामी जी को किसी जैनविद्वान् से अपने गहन अनभिज्ञता रोग का अच्छा इलाज कराना था; पीछे क़लम उठानी थी किन्तु अभिमान बुरी बला है। वह ऐसा कब करने देता।

स्वामी जी सान्त्वना देते है कि "रोगी घबरावे नहीं; हम नई सभ्यतानुसार शान्तिपूर्वक इलाज करेंगे" सो शायद आप की पुरानी वैदिक सभ्यता इस रोगी के सामने

सफल नहीं हो सकती। इसी कारण अपनी पुरानी वैदिक सभ्यता को छोड़कर नई सभ्यता को काम में लाने के लिये तत्पर हुए हैं किन्तु स्वामी जी! ख़्याल रहे कि आप सरीखे सैद्धान्तिक अनभिज्ञता के दुःसाध्यरोगी वैद्यों का नई सभ्यतानुसार किया हुआ इलाज भी इस स्वस्थ रोगी (दिगम्बर जैन समाज) के सामने सफल नहीं होगा।

खण्डन मण्डन मार्ग का पथिक सिर्फ़ जैनसमाज ही हो, ऐसा नहीं है। इस की शुरूआत आर्यसमाज से ही होती है। जैन समाज उत्तर पक्ष में रहता आया है। इस कारण इस छेड़ छाड़ में जैन समाज को ही दोषी ठहराना अनुचित है। स्वामी जी समस्त पिछली कार्यवाहियों पर दृष्टिपात करें।

मित्रवर पं० राजेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ अम्बाला छावनी ने स्वामी कर्मानन्द जी के इस १०० प्रश्नवाले ट्रैक्ट का उत्तर लिखाकर सेवा करने का अवसर दिया, इस के लिये आप को धन्यवाद है। स्वामी कर्मानन्द जी को इस पुस्तक में यदि कोई कटुवाक्य प्रतीत हो तो क्षमा करें। आपने सभ्यता से क़लम उठाई है यह आप की कृपा है; किन्तु आप यदि असभ्यता से क़लम उठाते तो भी उत्तर हम इसी प्रकार सभ्यता से देते।

वैशाख शु० द्वितीया
सोमवार वीर सं० २४५७
ता० २०-५-३१

निवेदक :—
अजितकुमार जैन शास्त्री,
मुलतान नगर

ॐ

आर्यसमाज के

१०० प्रश्नों का उत्तर !

जयति विजितकर्मारातिजालो जिनेन्द्रः ।

अजमेर नगर में विराजमान श्रीमान् कर्मानन्द जी सरस्वती वहां की आर्यसमाज के गणनीय कार्यकर्त्ता हैं। आपने जैनग्रन्थों के स्वाध्याय करने का कष्ट उठाया है. इस के लिये आप को धन्यवाद है। जैन ग्रन्थों के स्वाध्याय से आप को ग्रहण करने योग्य विषय प्राप्त हुआ या नहीं इस बात को तो आपही जानते हैं; किन्तु आपने जैनधर्म के विषयमें भूमण्डल के समस्त जैनियों से जो पूरे एक सौ प्रश्न किये हैं उन्हें देख कर यह पता अवश्य चलता है कि अधिकतर दोष निकालने के विचार से ही यह परिश्रम किया है। अस्तु !

अपने प्रश्नों का उत्तर पाने के लिये आपने समस्त जैनियों को विशेषकर दिगम्बर जैन समाज को (जैसा कि आप के १२-१३ प्रश्नों से और आपके नम्र निवेदन के अन्तिम नोट से प्रगट होता है) आमंत्रण किया है। इस कारण हम

अपना कर्त्तव्य समझ कर आपके प्रश्नों का ज्यों का त्यों रखते हुए उन का उत्तर लिखते हैं—

प्रश्न १—मुक्ति में जो अन्तिम शरीर से ऊन परिमाण वाला जीव होता है वह भौतिक होता है या अभौतिक ? यदि अभौतिक है तो उस शरीर की किस प्रमाण से सिद्धि है। यदि भौतिक है तो वह मुक्त कैसे कहला सकता है ?

उत्तर १—आप का यह प्रश्न ठीक नहीं रहा; अण्ड वण्ड होगया है। क्योंकि पहले तो आप "मुक्ति में जो अन्तिम शरीर से ऊन परिमाण वाला जीव होता है वह भौतिक होता है या अभौतिक" इन शब्दों में मुक्त जीव के भौतिक अभौतिक होने के विषय में पूछते हैं। फिर इसी के आगे "यदि अभौतिक है तो उस शरीर की किस प्रमाण से सिद्धि है" यह पूछकर आप मुक्त जीव के शरीर के विषयमें पूछ बैठे हैं। इस कारणप्रश्न से यह साफ ज़ाहिर नहीं होता कि आप मुक्त जीव के विषय में पूछ रहे हैं अथवा उस के शरीर के विषय में ? अस्तु।

जो वस्तु पृथ्वी, जल, आग और वायु के अंशों से बन कर तैयार होती है वह भौतिक कहलाती है; जैसे हमारे शरीर। और जिन पदार्थों में इन चारों चीज़ों के अंश नहीं होते वे अभौतिक होते हैं। जैसे आकाश, जीव आदि।

इस कारण सांसारिक दशा में जीव स्वयं अभौतिक होता हुआ भी कर्मबन्धन के कारण भौतिक शरीर में रहता

फिरता है, किन्तु जिस समय यह जीव अपने सच्चे और ठीक उद्योग से कर्मबन्धन नष्ट कर देता है यानी—मुक्त हो जाता है, तब उस के न तो भौतिक शरीर रहता है और न फिर कभी आगे उसके वैसा कोई शरीर होता है। स्वयं जैसा अमूर्तिक अभौतिक है वैसा ही सदा मुक्त दशा में रहता है।

हां! सांसारिक दशा में जीव अपने कर्मानुसार जैसा छोटा बड़ा शरीर पाता है उसी के अनुसार संकोचविस्तार स्वभाव होने के कारण जीव का आकार छोटा बड़ा होजाता है। मुक्त होते समय अपने शरीरसे कुछ छोटे आकार (लम्बाई, चौड़ाई मोटाई) में निकलता है, इस कारण सदा उसी आकार में रहता है। फिर घटता बढ़ता नहीं, क्योंकि शारीरिक संयोग न होने से सिकुड़ने फैलने का कोई कारण नहीं रहता।

इस कारण न तो कोई अभौतिक शरीर होता है और न कोई भौतिक मुक्त जीव ही जैन सिद्धान्त में बतलाया गया है। अतएव आप के प्रश्नानुसार किसी भी बात को सिद्धि करने की आवश्यकता नहीं। ऊपर लिखे अनुसार (भौतिक शरीर है और अभौतिक जीव है) जैन सिद्धान्तने जैसा माना है वैसा प्रत्यक्ष दीखता है और अनुभव में आता है। स्वामी जी को यदि इस पर भी सन्तोष न हो तो वे अपना प्रश्न ठीक करके कोई बात पूछें, हम उस का समाधान करेंगे। हमारी समझ से आप यदि जैनसिद्धान्त को थोड़ा भी समझने का परिश्रम करते तो आप को यह लचर प्रश्न कभी न उठता।

प्रश्न २—मुक्त जीव किस प्रकार सिद्ध-शिला पर जाता है? तुम्बी का दृष्टान्त आपके पक्ष की पुष्टि नहीं करता क्योंकि तुम्बी और मिट्टी का सम्बन्ध हमेशा से नहीं है।

उत्तर २—प्रश्न करने से पहले स्वामीजी को "न हि सर्वे दृष्टान्तधर्मा दार्ष्टान्ते भवितुमर्हन्ति" अर्थात्—दृष्टान्तकी सभी बातें दार्ष्टान्तमें [यानी —जिसके लिये दृष्टान्त (मिसाल) दिया जाता है उस में] नहीं होती हैं" न्याय का यह नियम अच्छी तरह समझ लेना था।

'महाराणा प्रताप सूर्य समान प्रतापशाली थे' इसके लिये यदि कोई पुरुष यह तर्क उठावे कि "सूर्य तो हमेशा से आकाश में चक्कर लगाता हुआ सर्वत्र प्रकाश करता है और अबभी ऐसाही है; महाराणा प्रताप तो सिर्फ़ आजसे लगभग तीन सौ वर्ष पहले ही भारतवर्ष में उत्पन्न होकर ६०-७० वर्ष तक जीवित रहे थे। वे ज़मीन पर चलते थे और चार गज़ लंबे चौड़े अँधेरे कमरे में भी उजाला नहीं कर सकते थे, फिर वे सूर्य समान प्रतापशाली कैसे हुए?" तो बुद्धिमान पुरुषों की निगाह में ऐसी समानता मिलाने वाला पुरुष मूर्ख ठहराया जायगा।

तुम्बी के दृष्टान्त से मतलब सिर्फ़ इतना निकालना चाहिये कि जिस तरह मिट्टी के बोझ से बंधी हुई तूंबी पानी के भीतर पड़ी रहती है, उसी प्रकार कर्मबन्धन के बोझ से दबा हुआ यह जीव संसार में पड़ा रहता है। जिस समय

तूंबी से मिट्टी दूर हो जाती है तब तूंबी हलकी होकर अपने आप पानी के ऊपर आजाती है, इसी प्रकार जीव से जब कर्मबन्धन छूट जाता है तब अपने आप लोकशिखर पर चला जाता है। इस दृष्टान्त में स्वामी जी सादि अनादिका पचड़ा लगा बैठे हैं। स्वामीजी महाराज! दृष्टान्त की समानता केवल "बोझ हट जानेपर अपने आप ऊपर आ जाने के" विषय में ही है। इस कारण आप यदि बाधा देना चाहें तो इस विवक्षित दृष्टान्त दार्ष्टान्त के अंश में बाधा दीजिये।

हमको खेद है कि न्यायसिद्धान्त की यह साधारण बात आपको समझानी पड़ी है।

इसके सिवाय मुक्त जीवके ऊर्ध्वगमन के अग्नि आदि औरभी दृष्टान्त हैं। जिस प्रकार तीव्र वायु आदि प्रतिबन्धक कारणों के न रहने पर अग्नि की ज्वाला ऊपर को ही जाती हैं उसी प्रकार कर्मोंका प्रतिबन्ध दूर हो जाने पर आत्मा भी स्वभाव से ऊपर को जाता है।

प्रश्न ३—यदि कर्म अनादि हैं तो उनका नाश कैसे हो सकता है?

उत्तर ३—पदार्थों की दशा चार प्रकारकी होती हैं—१. अनादि अनन्त, जैसे अभव्य जीव। अभव्यजीव संसार में अनादिकाल से हैं और मुक्त होनेकी शक्ति न होनेके कारण संसार से कभी न छूटेंगे। २. अनादिसान्त, जैसे भव्य-जीव; भव्यजीव कर्मबन्धन के कारण अनादिकाल से संसार

में चले आते हैं किन्तु कर्मबन्धन छूट जाने से उनकी संसार दशाका कभी अन्त हो जाता है। ३. सादि सान्त, जैसे मनुष्य पशु आदि के शरीर; किसी खास समय में कर्म उदय से मनुष्य आदि शरीर मिलता है और कुछ दिनों पीछे वह शरीर छूट जाता है। ४. सादि अनन्त, जैसे मुक्ति पाने वाले भव्य जीव; किसी ख़ास समय में कर्मबन्धन तोड़कर मुक्त होते हैं इस कारण सान्त, और कभीभी संसारी न होगा इस कारण उसकी वह मुक्तदशा अनन्त होती है।

आत्मा के रागद्वेष आदि भावों के निमित्त से कर्म किसी ख़ास समय में बंधते है और अपनी स्थिति पूरी हो जानेपर वे आत्मासे अलग होजाते हैं, इस कारण तो कर्मों को सादि सान्त (शुरूआत और अख़ीर वाला, बाइब्तिदा-बाइन्तिहा) कह सकते है ऐसा कर्म कोईभी नहीं होता जो अनादि-कालसे ही आत्मा के साथ चला आरहा हो।

हां! सन्तान परम्परा से कर्म आत्मा के साथ अनादि-काल से अवश्य बँधे हुए है। यानी–आत्मा अपने अशुद्ध-भावों के निमित्त से प्रति क्षण नये नये कर्म बान्धता रहता है और प्रतिक्षण पुराने पुराने कर्म अपना फल देकर आत्मा से दूर होते रहते हैं। बीज वृक्ष या पिता पुत्र परम्परा के समान अनादिकालसे चलेआते हैं, किन्तु जिस प्रकार बीज या वृक्ष जला कर ख़ाक कर दिये जांय तथा निःसन्तान पुरुष मर जावे तो वह अनादिकालसे चली आई बीज वृक्षकी तथा पिता पुत्रकी

परम्परा वहां पर ही समाप्त हो जाती है, इसी प्रकार आत्मा के साथ सन्तानरूप अनादिकाल से लगे हुए कर्म भी समाप्त हो जाते हैं । जिन बुरे भावों से कर्म बँधते हैं उन भावों को आत्मा यदि हटा दे तो फिर आगे कर्मबन्ध भी नहीं हो पाता।

गन्धकी कुंड में (जिन चूते हुए पानी के कुंडों के नीचे गन्धक आदि पदार्थ होता है इसी कारण कारण-अनादि से उन कुंडों का पानी गर्म होता है) पानी अनादिकाल से गर्म होता है, किन्तु यदि उसी जलको वहां से निकाल कर गङ्गा आदि नदी में डाल दिया जावे तो उसकी वैसी अनादि कालीन गर्म हालत खत्म हो जाती है। इसी प्रकार अनादिकालीन कर्म भी आत्मा से अलग हो जाते हैं।

कर्म आत्माके साथ संयोग सम्बन्ध से रहते हैं; इसी कारण वे छूटते भी रहते हैं । नियमानुसार किसी समय वे बिलकुल भी आत्मा से दूर हो सकते हैं ।

आत्मा की वैभाविकदशामें कर्मों का बन्धन होना रहता है। जिस समय वह विभावदशा मिटकर स्वाभाविकदशा प्रगट होजाती है, कर्मबन्ध भी बन्द हो जाता है । जैसे कि अग्नि आदि की उपाधिसे पानी गर्म होता है और जब वह उपाधि हट जावे तो पानी अपनी असल हालत में आकर ठंडा हो जाता है।

प्रश्न ४—पर्याय बदलना द्रव्य का स्वाभाविक धर्म है या वैभाविक। यदि स्वाभाविक है तो मुक्त जीवों का पर्याय

क्यों नहीं बदलता । यदि वैभाविक हैं तो किस के निमित्त से ?

उत्तर ४—आपने कुछ जैनग्रन्थ देखे अवश्य हैं, किन्तु उन का मोटा भी तात्पर्य न समझा है और न समझने का उद्योग किया है। इस बात की साक्षी आपके प्रश्न दे रहे हैं। यह प्रश्न जो आपने किया है, इसका उत्तर भी वहीं पर रक्खा हुआ है जहां से आप को प्रश्न पैदा हुआ।

गुणों के समुदाय को द्रव्य कहते हैं और गुणों की प्रति समय दशा पलटती रहती है। इसी कारण द्रव्यको गुण-पर्याय वाला (गुणपर्यायवद्द्रव्यम्) जैनसिद्धान्तने बतलाया है। जो द्रव्य खालिस शुद्ध होते हैं जैसे मुक्त जीव, आकाश आदि उन की स्वाभाविक पर्याय कहलाती है और जो द्रव्य मिश्रित (अशुद्ध) होते हैं उन की पर्याय वैभाविक परिणमनके कारण वैभाविक कहलाती हैं।

मुक्त जीवों की पर्याय पलटती है। इसको मोटे रूप से यों समझ लीजिये कि मुक्त जीव अभी यह जान रहे हैं कि आज वीर सं० २४५७ या विक्रम सं० १९८८ वैशाख बदी एकादशी सोमवार १३ अप्रैल १९३१ का दिन है, दशमी का दिन हो चुका है और कुछ घण्टे पीछे द्वादशी मङ्गलवार १४ अप्रैल १९३१ का दिन होगा। उन्हीं मुक्त जीवों का ज्ञान क्षण प्रतिक्षण बदलता हुआ कल यह जानने लगेगा कि आज वैशाख बदी द्वादशी है; एकादशी बीत चुकी है और कल

त्रयोदशी होगी। जैसे आपके मतानुसार आपका ईश्वर संसार में कल कुछ और करा रहा था व आज कुछ और ही करा रहा है और कल कुछ और रङ्ग रच देगा।

प्रश्न ५—जब आपके तीर्थंकरों ने इस शरीरका त्याग किया था तो लेटे हुए शरीर में से जीव लेटे हुआ निकला था या खडा हुआ?

उत्तर ५—स्वामी जी महाराज! क्षमा करें। बिना समझे बूझे ऐसा ऊटपटाङ्ग लचर प्रश्न कम से कम आप सरीखे बुद्धिमान संन्यासी को तो नहीं करना चाहिये। बताइये किस ग्रंथ में आपने देखा कि अमुक तीर्थंकर लेटे हुए मुक्ति को गये?

कोई भी तीर्थंकर लेटी हुई दशा में मुक्त नहीं हुए और न इसी कारण किसी तीर्थंकरका आत्मा शरीर से लेटा हुआ निकला है।

प्रश्न ६—साकार जीव शरीरमें से किस प्रकार निकलता है, क्योंकि उस का रोकने वाला पुद्गल का स्कन्ध वर्त्तमान है।

उत्तर ६—स्वामी जी महोदय! आपने प्रश्न तो ठीक किया, किन्तु दुःख है कि जैनकर्म-सिद्धान्त की अजानकारीसे आप को यह प्रश्न करना पडा। आपको मालूम होना चाहिए कि शरीरमें जीवको रोकने वाला आयुकर्म होता है। आयुकर्म के सिवाय अन्य कोई ऐसा पुद्गल स्कन्ध नहीं जोकि सूक्ष्मजीव

होजाता है। इसी कारण वह सिद्धशिला तक ही क्यों, उससे भी ऊपर चला जाता है।

प्रश्न ८—आप लोग जीव को साकार मानते हैं और साकार सावयव और कार्य होना है। तो आपका जीव जड़-द्रव्यों का समुदाय है या चैतन्य द्रव्यों का। क्योंकि नियत द्रव्यों के समुदाय का नाम ही आकार है?

प्रश्न ९—यदि जीवके अवयव जड़ हैं तो चेतनता कहां से आई और चैतन्य है तो चैतन्य में संयोग गुण को ग्रहण करने की योग्यता सिद्ध करो।

उत्तर ८-९—यह अटल नियमहै कि जो पदार्थ अपनी सत्ता (हस्ती-मौजूदगी) रखता है वह अवश्य साकार यानी आकार (लम्बाई, चौडाई, मोटाई के पैमाने) वाला होता है; निराकार कोई भी नहीं। हां! गधे का सींग, आकाश का फूल, बन्ध्या का पुत्र, बालू का तेल आदि पदार्थ निराकार अवश्य है।

आप जिस अपने परमात्माको निराकार कहते हैं, खेद है कि वह आप के मुखसे ही साकार सिद्ध होता है। वह यों; कि आपके स्वामी दयानन्द जी तथा आप अपने परमात्मा को इस भूगोल, खगोल (सूर्य, चन्द्र, तारे आदि) में ठसा ठस भरा हुआ (यानी व्यापक) मानते हैं; साथ ही भूगोल खगोल का मानचित्र (नक़शा) भी खींच देते हैं। अब बतलाइये कि जिस प्रकार घड़े में भरा हुआ पानी घड़े के आकारमें

है और कटोरे का पानी कटोरे के आकार में है, उसी प्रकार भूगोल, खगोल में भरा हुआ आप का परमात्मा भी भूगोल, खगोल की लम्बाई, चौड़ाई के बराबर है या नहीं ? यदि है तो उस नक्शेके आकार वाला होनेसे साकार ठहरा। अन्यथा, कह दीजिये कि हमारा परमात्मा भूगोल खगोल में नहीं पाया जाता।

सावयवके दो अर्थ हैं—एक तो अवयवों सहित, दूसरे भिन्न भिन्न अवयवोंसे बना हुआ। घडा, मेज़ आदि मिट्टी तथा लकडी के टुकडोंसे बनाये जाते हैं, इस कारण वे साव- यव के दूसरे अर्थ में शामिल हैं। जीव आकाश आदि अनादि कालीन अखण्ड, अकृत्रिम (किसी के द्वारा नहीं बने हुए) साकार पदार्थ हैं। इन को भिन्न भिन्न टुकडोंको जोड़कर कभी किसी ने नहीं बनाया। इस कारण जीव चैतन्यरूप साकार होता हुआ भी कार्य नहीं है।

जीवके अवयव चैतन्यरूप है, जड़रूप नहीं हैं; क्योंकि जीव स्वयं चेतनरूप है। पदार्थ जैसा स्वयं होता है उस के अवयव भी वैसे ही होते है। रही संयोग ग्रहण करने की बात, सो ऐसा तो तबहो जब कि जीवको किसी समय किसी कर्त्ता द्वारा या स्वयं भिन्न भिन्न टुकडों से मिल कर बना हुआ माना गया हो। जीव तो स्वभाव से अकृत्रिम, अखण्ड पदार्थ है। इस कारण उस में संयोगगुण ग्रहण करने की योग्यता सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं।

एक प्रश्न के ही जबर्दस्ती दो टुकड़े करके न जाने क्यों ८—९ नम्बर डाल दिये है। शायद यह कार्य भी प्रश्नों का सैकड़ा पुरा करने के लिये किया है। क्योंकि सौ प्रश्नों से कम होने पर शान में अन्तर आजाता।

प्रश्न १०—जब जीव साकार हैं तो जीव की आकृति किस के ज्ञान से उत्पन्न हुई और व्यक्ति किस उपादान कारण से या साकार वस्तु नित्य होने में प्रमाण दो।

उत्तर १०—जब जीव अनादिकालीन, अकृत्रिम है। किसी परमात्मा आदि ने नहीं बनाया, जैसा कि जैनसिद्धान्त मानता है तब आपका यह प्रश्न व्यर्थ ठहरता है। आकाश आपके मतानुसार खगोल भूगोल के आकारमें साकार होता हुआ भी नित्य है।

अनुमान लीजिये कि जीव साकार होता हुआ भी नित्य है, क्योंकि उसको किसी ने कभी नही बनाया जैसे कि आकाश।

प्रश्न ११—सूर्य, चन्द्र आदि पदार्थों के नित्य होने में क्या प्रमाण है?

प्रश्न १२—संसार स्वरूप से अनादि है अथवा प्रवाह से। यदि दोनों बातों को नहीं मानते तो तीसरी परिभाषा बतलावें।

उत्तर ११-१२—सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, आकाश, पहाड़. समुद्र आदि पदार्थ नित्य हैं, हमेशा से (अनादि से) चले आ

रहे हैं, क्योंकि किसी ख़ास समय में इन चीज़ों को किसी ने बनाकर तैयार नहीं किया।

आपका निराकार ईश्वर इन साकार पदार्थोंको बनाने में निमित्तरूप से भी नहीं बना सकता, क्योंकि यह एक अटल अकाट्य नियम है कि साकार पदार्थ का निमित्तरूप से भी बनाने वाला साकार पदार्थ ही हो सकता है, निराकार नहीं।

जीव, पुद्गल, आकाश आदि पदार्थों के समुदाय का नाम ही संसार है सो इनमें जीव, आकाश, आदि मूल पदार्थ स्वरूप से अनादि हैं और पिता, पुत्र तथा बीज वृक्ष आदि परम्परा से अनादि हैं।

स्वामी कर्मानन्द जी अपने पिता जी से उत्पन्न हुए; वे पिता जी अपने पिता जी से और वे भी अपने पिताजी से इत्यादि यह पिताओं की लाइन कहीं भी ख़त्म नहीं होगी। क्योंकि यह प्राकृतिक नियम (कुदरती क़ायदा) है कि मनुष्य अपने माता पितासे ही पैदा होता है; बिना माता पिताके,न तो अभीतक कोई मनुष्य पैदा हुआ और न हो ही सकता है। इस कारण मानना पड़ेगा कि स्वामी कर्मानन्द जी के पिता दरपिता की लाइन किसी ख़ास समय से नहीं चली, अनादि-कालसे चली आई है। अर्थात् मनुष्य, पशु आदि गर्भज तथा अंडे से पैदा होने वाले जीव जन्तु जो आज दीख पड़ते हैं वे इस संसार में हमेशा से थे; किसी ख़ास समय से पैदा नहीं हुए।

जबकि मनुष्य, पशु, पक्षी अनादिकालीन सिद्ध होते हैं तो उनके रहने के लिये जमीन, उड़ने के लिये आकाश, पीने के लिये पानी, सोने के लिये रात, जागने व काम करने के लिये दिन, सांस लेने के लिये हवा भी अनादि कालीन ही माननी पड़ेगी; क्योंकि इनके बिना कोई जीव जिन्दा नहीं रह सकता। इस कारण संसार और दिन रात होने के कारणभूत सूर्य, चन्द्र आदि पदार्थ भी अनादि कालीन नित्य सिद्ध होते हैं।

प्रश्न १३—धर्म अधर्म और काल तीन द्रव्य और एक लोकाकाश व्याप्त प्रत्येक आकाश के प्रदेश में एक काल अणु मौजूद है, तो धर्म अधर्म किस स्थल में रहते हैं ?

उत्तर १३—दयानिधान ! यह प्रश्न तो आपने अपना घर बिना देखे कर दिया। कृपया आपही बतलाइये कि आप का परमात्मा और आकाश व वायु, ये तीन चीज़ें सर्वव्यापक हैं सब जगह खूब भरी हुई हैं फिर आप, आपका आर्यसमाज, आर्यमन्दिर, गुरुकुल, कालेज आदि कहाँ रहते हैं ? इनके रहने का ठिकाना क्या आकाश से बाहर कहीं बना रक्खा है ? जो आपका उत्तर होगा वह ही हमारा भी उत्तर है।

हम देखते हैं कि पानी से लबालब भरे हुए कटोरे में ५० सुइयां तथा छटांक भर खांड भी समा जाती है, पानी भी नहीं फैलता। इस प्रकार जब कि स्थूल पदार्थ भी उसी स्थान पर समा जाते हैं जहां पर कि एक दूसरा पदार्थ मौजूद है

फिर धर्म, अधर्म, लोकाकाश और कालाणु ये तो अमूर्तिक सूक्ष्म पदार्थ है। एकही स्थान पर इनके रहने में क्या बाधा आ सकती है। एक ही स्थान पर अनेक पदार्थों के ठहरने में बाधा स्थूलताके कारण आती है। जब कि ये पदार्थ स्थूल नहीं फिर इनके रहने में रुकावट भी क्या आ सकेगी।

प्रश्न १४—काल के अणु किस प्रमाण से सिद्ध हैं?

उत्तर १४—प्रत्येक पदार्थ प्रतिक्षण अपनी हालत बदलता है जो कि यकायक मोटी निगाहसे मालूम नही होपाती। भारी तबदीली होने पर ही हमको पता चलता है। बच्चा हर एक क्षणमें अपने शरीर में उन्नति करता जाता है उसकी वह बारीक बढ़वारी हमको आंखों से नहीं दीखती, किन्तु विचार करने पर मालूम अवश्य हो जाती है। पदार्थों की इस सूक्ष्म तबदीली का निमित्त कारण कालद्रव्य है, क्योंकि बाहरी निमित्त कारण विना कोई कार्य नहीं हो सकता।

काल द्रव्य अणुरूप इस कारण है कि उसका कार्य (प्रत्येक वस्तुके हर एक अंशमें तबदीली कराते रहना) भी अणुरूप है। धर्म, अधर्म, आकाश आदि द्रव्यों के कार्य लंबाई चौड़ाई विस्तार लिये (गमन ठहरना आदि) होताहै। कालका कार्य इस प्रकार नहीं है। यह तो प्रत्येक परमाणु में प्रत्येक आकाश के प्रदेश में तथा अन्य द्रव्यों के भी प्रत्येक अन्श में क्षण प्रतिक्षण जुदी जुदी तरह से तबदीली उत्पन्न कराता है। इस कारण काल द्रव्य अणुरूप ही हो सकता है।

प्रश्न १५—धर्म किन गुणों का समुदाय है ?

उत्तर १५—धर्मद्रव्य गतिमत्व, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अमूर्तत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व आदि अनेक गुणों का समुदाय है । हलन चलन करते हुए जीव पुद्गलों को उनकी क्रिया में सहायता करना धर्मद्रव्य का मुख्य असाधारण गुण है । वैज्ञानिक विद्वान इस को ईथर नाम से कहते हैं ।

प्रश्न १६—कर्म द्रव्य है या गुण; यदि द्रव्य है तो द्रव्य ६ न रहे और यदि गुण है तो किस द्रव्य का ।

उत्तर १६—स्वामी कर्मानन्द जी बहुत अभिमान के साथ न सिर्फ़ किसी दो एक व्यक्ति का किन्तु समूचे जैन समाज का इलाज करने चले हैं, किन्तु जैनसिद्धान्त की अनभिज्ञतारूप भारी दुःसाध्यरोग में खुद फंसे हुए हैं । आपका कर्तव्य था कि किसी अच्छे वैद्य से पहले अपनी चिकित्सा करा लेते; पीछे इस काममें पैर रखते ।

जैनसिद्धान्त की यह एक बहुत साधारण बात है कि पुद्गलद्रव्यके स्कन्धों में कार्माण नामक एक विशेष स्कन्ध होते हैं । वे ही कार्माणस्कन्ध संसारी जीवों की योगशक्ति से आकर्षित होकर आत्मा के साथ मिल जाते हैं उस समय उनको कर्म कहते हैं । इसलिये मोटी बात है कि कर्म पुद्गल द्रव्य हैं । न तो किसी द्रव्यके वे गुण हैं और न छह द्रव्यों के सिवाय कर्म कोई सातवाँ द्रव्य ही है ।

पता नहीं आप कर्म आनन्द के स्वामी होकर भी यह कैसा बेढङ्गा प्रश्न कर बैठे।

प्रश्न १७—आपके यहां जो धर्मका लक्षण किया है, वह अतिव्याप्त है, क्योंकि आकाश भी गमन में सहकारी है।

उत्तर १७—धर्मद्रव्यके लक्षण को अतिव्याप्त बनाने से पहले आपने धर्मद्रव्य का लक्षण ठीक नही समझा। धर्मद्रव्य का लक्षण यह है कि जो समस्त सक्रिय जीव पुद्गलों को हलन चलन में सहायता दे। आकाशद्रव्य पदार्थों को अवकाश (स्थान) देता है न कि किसी भी पदार्थ की हलन चलन क्रिया में कोई सहायता देता है.। क्योंकि यदि आकाशद्रव्य ही धर्म-द्रव्यका कार्य कर लेता तो फिर जीव पुद्गल द्रव्य अलोका-काशमें भी चले जाते और इसी कारण आकाश के लोक, अलोक ऐसे दो भेद नहीं होते।

इस कारण आकाशद्रव्य जीव पुद्गलोंकी हलन चलन क्रिया मे सहायता नहीं देता।

प्रश्न १८—अढाईद्वीप परिमाण वाली सिद्धशिलापर जीव नीचे से जावेंगे तो शिला के नीचे तक तो धर्मद्रव्य की सहायता से जा सकेंगे, परन्तु उस सफेद शिला के ऊपर कैसे जावेंगे। दरवाजों से होकर या शिला फोड़ कर?

उत्तर १८—स्वामी जी महाराज! धर्मद्रव्य-क्या सिद्धशिलाके नीचे तक ही है, ऊपर नहीं है? जो आपको यह निर्मूल शङ्का उठ खडी हुई। आपको मालूम होना चाहिये कि

धर्मद्रव्य सिद्धशिला के ऊपर भी है। उसी की सहायता से जीव सिद्धशिला के ऊपर जाते हैं।

सिद्धशिला में न तो कोई दरवाज़ा है (अब आप ने कोई बना दिया हो तो पता नहीं) और न शिला फोड़कर ही कोई जीव ऊपर जाता है। जीव सूक्ष्म, अव्याघाती (न किसी को रोकने वाला और न खुद किसी से रुकने वाला) पदार्थ है। इस कारण वह बिना तोड़े फोड़े शिला के भीतर से चला जाता है। इसको यों समझ लीजिये कि किसी प्राणी को ऐसे किसी कांचके बर्तनमें बन्द कर दीजिये जिसमें कि ज़रासा भी कोई छेद न हो। ऐसा करने पर वह प्राणी कुछ समय ज़िन्दा रह कर मर जायगा। मर जाने पर उसका जीव उस बिना छेद वाले बर्तन में से निकल कर दूसरी योनि में चला जायगा और वह शीशे का बर्तन कहीं से भी न टूटेगा।

क्या आपका परमात्मा पत्थर लोहे आदि के भीतर नहीं रहता है और यदि रहता है तो क्या तोड़ फोड़ कर दरवाज़े बना कर ही रहता है?

प्रश्न १६—आपका जीव लम्बाई में तो लोकाकाश के बराबर है और संकोच इतना है कि चिउंटी से भी छोटे शरीर में आजाता है तो उसकी मोटाई कितनी है?

उत्तर १६—इस प्रश्नमें भी आपने कमाल कर दिया। जैनग्रन्थों ने आपको जीव की लम्बाई और संकोच तो बतला दिया, किन्तु आप को मोटाई नहीं बतलाई।

अधर्मद्रव्य का लक्षण है कि "जो जीव पुद्गल आदि द्रव्योंको ठहरनेमें सहायता करता है।" पृथ्वी ठहरने के लिये उन कुछ एक स्थूल पदार्थों को ही सहायता कर सकती है जो थलचर हैं या जो पृथ्वी पर मौजूद हैं। किन्तु जो जीव जल में रहते हैं या जो विमान आदि परमाणु, स्कन्ध आदि आकाश में ठहरे हुए है उन असंख्य पदार्थों के ठहरने में पृथ्वी सहायक कहां से हो सकती है? इस कारण अधर्म द्रव्य ही समस्त पदार्थों के ठहरने में सहायता देता है। इसी लिये अधर्मद्रव्य का लक्षण पृथ्वी में अतिव्याप्त नहीं हो सकता।

प्रश्न २२—आपकी शिद्धशिला लोकाकाश में है या बाहर, यदि अन्दर है तो मुक्ति कैसी, यदि बाहर है तो जो मुक्त जीव उस शिलापर विराजमान है उनकी क्या गति होगी? क्योंकि न तो वहां अधर्मद्रव्य होगा जिससे स्थिति हो सके और न धर्म द्रव्य है जिससे गति हो सके।

प्रश्न २३—आपके ईश्वर सिद्धशिला से बाहर जा सकते हैं या नहीं।

उत्तर २२-२३—मिहरबान स्वामी जी! आप अभिमान के साथ प्रश्न न करके जिज्ञासुभाव से शंका करते तो अच्छा था, क्योंकि उस तरह आप उपहास से बच जाते। आकाश पाताल की बातें करते हुए आप अभी तक जैन-सिद्धान्त की यह मोटी सी साधारण बात भी न जान सके

प्रश्न २५—मूर्तिका लक्षण क्या है ?

उत्तर २५—स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण जिसमें पाये जावें; वह मूर्ति है । यानी—जो रंगदार हो ठंडा गर्म आदि कोई स्पर्श, खट्टा मीठा आदि कोई रस और सुगन्धि, दुर्गन्धिमें से कोई एक गन्ध जिसमें पाई जावे वह मूर्ति या मूर्तिक है। ये चारों गुण एक साथ रहते हैं। यह बात दूसरी है कि किसी पदार्थ में कोई गुण सूक्ष्म होने से जल्द ठीक मालूम न होसके।

मूर्ति का अर्थ आकार भी होता है। आकार के दो भेद हैं मूर्तिक, अमूर्तिक । मूर्तिक आकार तो वह है जो चित्र, प्रतिमा, फोटो, मानचित्र (नकशा) आदि रूपमें हमको दीख पडते है। अमूर्तिक आकार घटाकाश, (घड़े आदि के भीतर का आकाश यानी पोल) मुक्त जीव आदि का होता है ।

प्रश्न २५—आपके जिनों (ईश्वरों) में सब एक सा हैं या छोटे बड़े; यदि एकसा है तो जिनेन्द्र आदि शब्दों का व्यवहार आपके ग्रन्थों में किस कारण है ? यदि छोटे बड़े हैं तो किस कारण ?

उत्तर २५—'जिन' शब्द का अर्थ कषाय तथा कर्मों को जीतने वाला है (जयतीतिजिन.)। इस कारण जिन शब्द का व्यवहार अधिकतर तो जीवन्मुक्त या पूर्णमुक्त परमात्मा के लिये आता है उनही को जिनेन्द्र शब्द से भी कह देते है जिसको कि कर्मधारयसमाससे (जिनश्चासौइन्द्रः) सिद्ध कर लिया जाता है। इस कारण वहां छोटे बड़ेपन का कोई भेद

नहीं आता और न अर्हन्तों में अथवा सिद्धों में परस्पर किसी को छोटा बडा माना ही है।

कभी कहीं पर जिन शब्द का वाच्य क्रोध लोभ काम आदि कषायों पर विजय पाने वाले साधु भी रक्खा गया है। वहां पर षष्ठी तत्पुरुष समाससे (जिनानां इन्द्रः) या सप्तमी तत्पुरुष (जिनेषु इन्द्र) से जिनेन्द्र शब्द बनता है। वहां जिन शब्दका वाच्य क्रोधादि कषाय विजेता साधु और जिनेन्द्र शब्द का अर्थ परमात्मा होता है।

जैसे 'ईश्वर' शब्द अधिकतर परमात्मा के लिए प्रयोग किया जाता है, किन्तु कभी कहीं राजा को भी (ईश्वरोधिभुरी-शानोभर्तेन्द्र इन ईशिता) ईश्वर कह देते हैं; तब परमात्मा के लिये 'परमेश्वर' शब्द का प्रयोग होता है। वैसे 'ईश्वर परमेश्वर' का एक ही परमात्मा अर्थ माना जाता है।

प्रश्न २६—जीव के ज्ञान में कर्म का आवरण कैसे आया? कोई ऐसा दृष्टान्त दो जहां गुण और गुणी में आवरण आया हो।

उत्तर २६—गुण और गुणी अभिन्न होते हैं, अलग २ कभी नहीं होते और न उन के बीच में कुछ अन्तराल ही होता है। इस कारण गुण पर आवरण (परदा-रुकावट) आना मानो गुणी पर आवरण आना है। संसारी जीव का ज्ञान अनादि से आवरण में है जो कि कारण अनुसार कम अधिक होता रहता

है। कोई ऐसा समय नहीं था जब कि जीव का ज्ञान शुद्ध हो, पीछे से उस पर आवरण आया हो।

जैसे अग्नि का गुण गर्मी है, उस उष्ण (गर्मी) गुण पर चन्द्रकान्त मणि से या मन्त्रद्वारा अथवा मैक्समेरेजम आदि शक्ति से ऐसा आवरण (ढकना) डाल देते है जिस से जलता हुआ अङ्गारा भी ठण्डा हो जाता है। अब विचार कीजिये कि उस अंगारे और उस के उष्णगुण पर वह आवरण आया या नही, जिस से कि उस की गर्मी छिप गई। यह सादि पदार्थ का दृष्टान्त है। अनादि पदार्थ का दृष्टान्त लीजिये—जैसे किसी खान में मिट्टी पत्थर से मिला हुआ अनादि कालीन सोने का चमकता हुआ पीला रङ्ग आवरण में है।

प्रश्न २७—कर्म जीव के साथ किस सम्बन्ध से रहते हैं ?

उत्तर २७—कर्म जीवके साथ संयोग सम्बन्ध से रहते हैं। संयोग सम्बन्ध एकतो सादि (शुरूआत लिये हुए) होता है; जैसे दूध पानी आदि का संयोग (जो कि पहले अलग अलग रहते हुए पदार्थों का पीछे मेल होनेपर पैदा होता है)। दूसरा-अनादि संयोग होता है जैसे कि आपके मतानुसार ईश्वर का और साधारण जीवों के साथ। कर्मों का और जीव का परम्परा रूपमें अनादि संयोग सम्बन्ध है। अर्थात् ऐसा कोई समय नही था कि जब जीव बिलकुल शुद्ध हो और कर्म पीछे आकर उससे मिले हों।

प्रश्न २८—आपके अनन्त साकार जीव सीमा वाले लोकाकाश में किस प्रकार समा सकते हैं? अथवा ऐसा कोई दृष्टान्त दो जहां साकार वस्तु स्थल न घेरती हो।

उत्तर २८—जीव सूक्ष्म पदार्थ है; उसके कई (आहारक, तैजस, सूक्ष्म) शरीर भी ऐसे बारीक होते हैं कि जो न तो दूसरे से रुकते हैं और न दूसरे को रुकावट देते हैं। यानी-एक ही स्थल पर अनेक जीव रह सकते हैं। ऐसी अवगाहन (रहने की) शक्ति उनमें होती है। इस कारण अनंत जीव इस सीमावाले लोकाकाश में अच्छी तरह आ जाते हैं। मोटा दृष्टान्त लीजिये। पानी से लबालब भरे हुए कटोरे में एक २ करके पचास सुइयां डाल दीजिये। बिना पानी फैले वे उसमें समा जायंगी।

कुछ स्थूल जीव पुद्गल पदार्थ ही ऐसे होते हैं जोकि एक स्थान पर अनेक नहीं ठहर सकते। सूक्ष्म पदार्थोंके लिये यह बात नहीं है।

यह चिन्ता तो आपको होनी चाहिये कि आपके मतानुसार कुछ एक हज़ार (१५-२५) मील के लंबे चौड़े जङ्गल में अनंत जीव और अनंत परमाणु कैसे आ जावेंगे, जबकि ईश्वर भी सब जगह ठसाठस व्यापक है। जैन सिद्धान्त के अनुसार तो लोकाकाश आपके संकुचित जगत से करोड़ों गुणा बड़ा है।

प्रश्न २९—जब कर्मबन्धन अनादि है तो रागद्वेष

उसका कारण कैसे ? क्या कोई ऐसा दृष्टान्त है कि जिसका कारण भी हो, अनादि भी हो ?

उत्तर २९—मोहनीय आदि कर्मों के निमित्त से राग-द्वेष और रागद्वेष के निमित्त से कर्मबन्धन होता है। इस कारण परम्परा से दोनों ही अनादि हैं और दोनों ही एक दूसरे के कार्य तथा कारण हैं। रागद्वेष के कारण कर्मबन्धन हुआ तो कर्मबन्धन के कारण रागद्वेष हुए। दृष्टान्त लीजिये कि पेड़ और उसका बीज दोनों सन्तान परम्परासे अनादि हैं; दोनों ही एक दूसरे के कारण है। बीज था तो पेड़ पैदा हुआ किन्तु बीज भी तो पेड़ से आया था और वह पेड भी बीजसे ही पैदा हुआ था। इस प्रकार बीज और पेड़की लाइन अनादि होती हुई भी एक दूसरे की कारणरूप है।

आप अपने ही घरको देखिये। आपके मतानुसार आपका ईश्वर अनादि है और सृष्टि प्रलय का सिलसिला भी अनादिकालीन है। इस प्रकार सृष्टिप्रलय के अनादिकालीन होने परभी आपने उसका निमित्त कारण ईश्वर को माना ही है।

प्रश्न ३०—संसार में जो आकृति है वह किसके ज्ञान से आई है ? क्योंकि यह नियम है कि आकृति हमेशा कर्ता के दिमाग़ में से आती है।

उत्तर ३०—संसार का जो आकार है वह अनादिकालीन स्वयंसिद्ध है। किसी दिमाग़ वाले ने इसको तैयार नहीं

किया। जिन छोटे मोटे साकार पदार्थों को दिमागवाले मनुष्य आदि बनाते हैं वे मनुष्य आदि खुद भी शरीरधारी, मूर्तिक साकार हैं। मूर्तिक शरीरधारी दिमागवाला ऐसा कोई भी नहीं जो अमूर्तिक पदार्थोंको बनादे या वह दिमाग वाला खुद अमूर्तिक निराकार अशरीर होकर भी अमूर्तिक साकार पदार्थों को बनादे। इस कारण यह अटल नियम है कि सादि साकार मूर्तिक चीज का यदि कोई बनाने वाला हो भी तो वह मूर्तिक साकार शरीरधारी ही होगा।

इस प्रश्न से जो आप अपने परमात्मा के सृष्टि-कर्त्तापनका समाधान देखना चाहते हैं सो भूल जाइये, क्योंकि आपका परमात्मा तो निराकार होने से अवस्तु है। जैसे खरविषाण (गधे का सींग) वह अमूर्तिक, शरीरधारी न होने से प्राकृतिक नियमानुसार (कुदरती कानून से) इस मूर्तिक संसार का तो क्या एक तिल मात्रका भी कर्ता नहीं हो सकता।

बीज वृक्ष, मुर्गी और उसके अंडे, मनुष्य और उन के माता पिता इत्यादि आकृति वाले पदार्थों का सिलसिला अनादि सिद्ध होता है। इस कारण इनका कोई कर्ता नहीं। इसी प्रकार इतर अनादि पदार्थों का भी समझ लीजिये।

प्रश्न २१—कर्म का कारण क्या है? यदि कारण नहीं है तो वे नाश होकर किसमें लय होंगे क्योंकि नाशका अर्थ ही कारण में लय होने का है।

उत्तर ३१—कर्मों का उपादान कारण स्वयं पुद्गलीक कार्माण स्कन्ध हैं; निमित्त कारण जीवकी योगशक्ति तथा राग-द्वेषादि भाव हैं। कर्म अपनी स्थिति (मियाद) समाप्त होने पर जब जीव से अलग होजाते हैं तो वे उसी शुद्ध पुद्गल स्कन्ध रूपमें आ जाते हैं। जैसे चांदी की मिलावट से अलग होजाने पर सोना अपनी सोने की हालत में आ जाता है।

कर्म बनने का अर्थ कार्माण स्कन्धों का जीव के साथ मिल जाना है और कर्मों के नाश होने का अर्थ जीवसे उनका छूट जाना है।

प्रश्न ३२—जीव अपने ज्ञान से तृप्त होता है अथवा अजीव के ज्ञानसे। यदि अपने ज्ञानसे तब तो वह ज्ञान नित्य है, अतः जीव नित्यमुक्त होना चाहिये। यदि अजीव के ज्ञान से तृप्त होता है तो किस प्रकार?

उत्तर ३२—स्वामीजी न जाने किस नींद के झोके में प्रश्न लिखने बैठे हैं। जीवकातो ज्ञान गुण है ही, किन्तु अजीव का ज्ञान कौनसा होता है इसको स्वामी कर्मानन्दजी ही जानें। अस्तु।

संसारी जीव का ज्ञान रागद्वेषादि के कारण मिथ्याज्ञान होता है, इसी कारण वह शरीर, धन परिवार आदि को अपना समझता हुआ विषय भोगोंमें सुख टटोलता है। किन्तु वहां पर उसकी भोगतृष्णा तृप्त नहीं होती, जिस समय कर्म आत्मा से सर्वथा छूट जाते है तब पूर्ण सच्चा ज्ञान प्रगट होता है जोकि

सब पदार्थों को जानता है। उसी समय आत्मा पूर्ण तृप्त होता है; उसके पहले नहीं होता।

मोहनीय आदि कर्मके कारण जीव लोभ, चिन्ता आदि में फंस कर अतृप्त रहता है। यानी—असंतोष का कारण लोभ तथा मिथ्याज्ञान है। मुक्त जीवके वे कारण नहीं रहते; इसलिये मुक्त जीव पूर्ण तृप्त हो जाता है।

प्रश्न ३३—आप के तीर्थंकर सर्वज्ञ थे, इसमें क्या प्रमाण है? प्रत्यक्ष प्रमाण तो है ही नहीं क्योंकि आपके तीर्थंकर इस समय उपस्थित नही है। जब प्रत्यक्ष प्रमाण नही है तो अनुमान भी नही होसकता। यदि कहो हमारे शास्त्र प्रमाण हैं तो साध्य-सम हेत्वाभास है क्योंकि आपके शास्त्र भी तो अभी साध्य-कोटि में हैं?

उत्तर ३३—हमारे तीर्थंकरों की सर्वज्ञता को सिद्ध कर-ने के लिये यद्यपि हमारे असाधारण तात्विक उपदेशों तथा सिद्धान्तों से भरे हुए जैनशास्त्र पर्याप्त है, किन्तु हम अपने तीर्थंकरों की सर्वज्ञता की सिद्धि इतिहास से भी सिद्ध कर सकते हैं। देखिये—प्रसिद्ध बौद्धग्रंथ सुत्तपिटकका द्वितीय अङ्ग मज्झिमनिकाय में महात्मा बुद्ध कहते है—

"एकमिदाहं, महानाम, समयं राजगहे विहरामि गिज्झ-कूटे पव्वत्ते। .... निगुण्ठो, आवुसो नाथपुत्तो सव्वञ्ञु सव्वदस्सावी अपरिसेसं ञाण दस्सनं परिजानाति। चरतां

चमे तिट्ठतो च सुत्तस्स च जागरस्स च सततं समितं ज्ञान दस्सनं पच्चुपट्ठितंति"। इत्यादि।

अर्थात्—जैनधर्म के अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामीके समकालीन महात्मा बुद्ध कहते है कि "हे महानाम! मैं एक समय राजगृह में गृद्धकूट पर्वत पर विहार कर रहा था।... .....निग्रन्थ ज्ञातपुत्र (भगवान महावीर; महात्मा बुद्ध महावीर स्वामी को इसी शब्द से पुकारते थे) सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं। वे निःशेष ज्ञान और दर्शन के ज्ञाता हैं। चलते, ठहरते, सोते जागते आदि सब समय का उनको ज्ञान दर्शन है।"

इसी प्रकार भगवान महावीर स्वामी अन्तिम तीर्थंकर की सर्वज्ञता का समर्थन अंगुत्तरनिकाय आदि अनेक बौद्ध-ग्रन्थों से होता है। "यथा सर्वज्ञ आप्तो वा सज्योतिर्ज्ञाना-दिकमुपदिष्टवान् यथा ऋषभवर्द्धमानादिरिति" यह उल्लेख न्यायबिन्दु (अध्याय ३) का है जो कि प्राचीन अजैन ग्रन्थ हैं। इस का अर्थ यह है कि "ऋषभनाथ, वर्द्धमान आदि तीर्थ-ङ्करों की तरह सर्वज्ञ तथा आप्त ने ही ज्ञानादिक का उप-देश दिया"।

इसी प्रकार प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् डा० विमल चरण लॉ एम० ए०, पी० एच० डी० आदि भी "सम क्षत्रिय ट्राइब्स आफ ऐन्शियेन्ट इन्डिया" नामक पुस्तक के ११८-

भी निःस्वार्थ, निःस्पृह, परोपकारी विद्वान् थे। इस कारण सर्वज्ञ भगवान महावीरका वह सत्य उपदेश शिष्य प्रतिशिष्य रूप से चला आया है। इसलिये जैनशास्त्रों में जो उल्लेख है वह भगवान महावीरके उपदेश अनुसार होने के कारण जिनवाणी ही है। इसलिये जैनग्रन्थों का धार्मिक तथा तात्विक कोई भी ऐसा उल्लेख नही जो वेदादि ग्रन्थों के समान परस्परविरुद्ध युक्तिविरुद्ध असत्य साबित हो। भगवान महावीर स्वामी ने जिस प्रकार खुले मैदान डङ्के की चोट पर उपदेश दिया था, उसी प्रकार जैन ऋषियोंने खुलासा स्पष्टरूप में लाखों ग्रन्थों की रचना की है।

प्रश्न ३५—आपके तीर्थङ्कर जो उपदेशादि देते थे तो उनमें राग सिद्ध होता है। यदि उनमें राग सिद्ध हो तो उनकी मुक्ति किस प्रकार हुई। यदि बिना रागके उपदेश देते थे तो बिना रागके कर्म की सिद्धी किस प्रमाण से सिद्ध होसक्ती है?

उत्तर ३५—तीर्थङ्कर जिस समय मोहनीय आदि चार कर्म अपने आत्मासे दूर करके अर्हन्त, सर्वज्ञ वीतराग हो जाते हैं, उस समय उनके इच्छा, राग, द्वेष आदि भाव नहीं होते। उस समय इच्छा न होते हुए भी तीर्थङ्कर नामक कर्मप्रकृतिके उदय होने से तथा वचनयोग के कारण तीर्थङ्करों का उपदेश होता है। अर्हन्त अवस्था प्राप्त होजाती है, किन्तु फिर भी शेष ४ कर्म बचते है। उनमें से नामकर्म के कारण उपदेश, विहार आदि होता है। तीर्थङ्कर प्रकृति उसी नामकर्म का एक भेद है।

भाषाटीका नहीं है। हां सर्वार्थसिद्धि टीका अवश्य है। दोनों ग्रंथों की भाषा टीका आचार्यों ने नही लिखी हैं जैसा कि आप लिखते हैं।

महावीर स्वामी दयाके प्रमुख प्रचारक थे। उन्हीं के उपदेश से भारतवर्ष से पशुहवन, पशुहिंसा और मांसभक्षण बहुत कुछ दूर होगया था। इस कारण यह बात सर्वथा असत्य है कि भगवान महावीरने मांस खाया था। रही श्वेताम्बरी ग्रंथों की बात; सो आप उनके ग्रंथ देखिये। रत्नकरंड तथा सर्वार्थसिद्धि टीकाकारों ने शायद श्वेताम्बरी शास्त्रों में कहीं उल्लेख पाया होगा। श्वेताम्बरी ग्रंथकार भी मांसभक्षण के सख्त विरोधी हैं; उनके ग्रंथों को बदनाम करने के लिये किसी दुराशय स्वार्थी ने किसी ग्रंथ में कुछ मिला दिया हो तो दूसरी बात है।

प्रश्न ३७—आपके तीर्थंकर प्रायः क्षत्रियों के यहां ही क्यों जन्म लेते हैं; क्या और वर्ण में मुक्ति होना असंभव है?

उत्तर ३७—तीर्थंकर क्षत्रियकुल में उत्पन्न होते हैं, किन्तु मुक्ति क्षत्रिय वर्ण वालों के सिवाय और कोई न पावे ऐसा कोई नियम नहीं। ब्राह्मण तथा वैश्य वर्ण वाले मनुष्य भी मुक्ति जाते हैं। तीर्थङ्करों के क्षत्रिय वर्ण वाले ऊंच गोत्र का उदय होता है। इस कारण वे क्षत्रियराजकुल में जन्म लेते हैं।

प्रश्न ३८—श्वेताम्बरों के ग्रंथों में दिगम्बर मत की

उत्पत्ति श्री महावीर स्वामी जी के निर्वाण हुए ६०९ वर्ष पश्चात लिखी है, वह किस प्रमाण से असत्य है। देखो आवश्यक निर्युक्ति भाष्यचूर्णि।

उत्तर ३८—दिगम्बर श्वेताम्बर सम्प्रदाय की प्राचीनता अर्वाचीनता की आपको चिन्ता क्यों सवार हुई ?

पता नही इस प्रश्न से आपको क्या मतलब है ? अस्तु। किसी विषय की प्राचीनता अर्वाचीनता जानने के लिये ऐतिहासिक सामग्री जान लेनी चाहिये। जबकि २२०० वर्ष पुराने दिगम्बरीय अनेक शिलालेख श्रवण बेलगोला में मौजूद है, अनेक दिगम्बरीय मूर्तियां जब तीन हजार वर्ष पुरानी पाई जाती हैं, कोई प्राचीन जैन मूर्ति ऐसी नहीं जो कि दिगम्बरी न होकर श्वेताम्बरी हो, तब आप स्वयं निर्णय कर सकते है कि दिगम्बर सम्प्रदाय प्राचीन है या श्वेताम्बर सम्प्रदाय। जबकि पुष्पदन्त, भूतवलि, कुंदकुन्द, समन्तभद्र आदि प्रसिद्ध दिगम्बर आचार्य विक्रम संवत् से पहले तथा प्रथम शताब्दी के हैं तब विचारिये कि निर्युक्तिचूर्णि का लिखना कहां तक ठीक है।

इतिहास प्रसिद्ध सम्राट चन्द्रगुप्त (प्रथम) जो कि विक्रम सम्वत् से बहुत पहले हुए है स्वामी भद्रबाहु के शिष्य थे। अंत में उन्होंने दिगम्बर साधु बनकर श्रवण बेलगुल पर्वतपर तपस्या की थी। श्वेताम्बर सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव उन के पीछे हुआ है।

प्रश्न ३९—जब विदेह क्षेत्र में तथा यहां चतुर्थ आरे की आदि में नववर्ष के मुनिको केवलज्ञान हो सकता है तो बिना कुछ आहार किये उस का शरीर स्थूल कैसे होगा ?

उत्तर ३९—आहार ६ प्रकार का होता है। उन में से एक नोकर्म आहार है जिससे कि भोजन बिना भी शरीरका पोषण होता है । केवलज्ञानी के शरीर को बिना भोजन किये भी उन नोकर्म पुद्गल वर्गणाओं से पोषण मिलता है। केवल-ज्ञानी अरहंत भगवान के अनन्तसुख, अनन्तबल, अनन्तज्ञान और अनन्तदर्शन प्रगट होजाते हैं। इस कारण उन को भूख नहीं लगती, जिससे कि लाचार होकर वे भोजन करें।

अण्डे के भीतर बच्चे को कोई खाना नहीं मिलता, उस को मादा के सेने से ही पुष्टि मिल जाती है। इस कारण यह आवश्यक नहीं कि भोजन से ही शरीर का पोषण होता हो। फिर अर्हन्त भगवान तो अनन्त शक्ति, सुखधारक परमात्मा है; उनको क्यों तो भूखका कष्ट हो और क्यों वे भोजन करें ? यदि उन को भूख का कष्ट हो तो वे अनन्त सुखी क्योंकर हो सकते हैं? नोकर्म वर्गणाओं से उन का शरीर पुष्ट होता रहता है। इस कारण आप उन की चिन्ता छोड दीजिये।

प्रश्न ४०—परिग्रहधारी को मोक्ष श्वेताम्बरोंके किस ग्रन्थ में लिखा है।

उत्तर ४०—प्रवचनसारोद्धार आदि में लिखा है। देख लीजिये।

प्रश्न ४१—रोगी ग्लानि साधु मद्य मांस सहित का आहार करे, ऐसा श्वेताम्बरों के किस ग्रन्थ में लिखा है ?

उत्तर ४१—श्वेताम्बर सम्प्रदाय के गृहस्थ भी जब मद्य मांस नहीं खाते तब उनके साधु ऐसा अभक्ष्यभक्षण करें, यह तो असम्भव सा मालूम होता है। यदि किसी मनचले दुराशय ने किसी श्वेताम्बरी ग्रन्थ में कुछ मिलावट कर दी हो तो दूसरी बात है। आप उन के ग्रन्थ देखिये।

प्रश्न ४२—महावीर स्वामी का गर्भपरिवर्तन अर्थात् ब्राह्मणी के गर्भ से क्षत्राणी के गर्भ में चले जाने को और गोशाला के भगवान महावीर पर तेजोलेश्या छोड़ने के कारण ईश्वर के बीमार होने को अछेरा मानते है तो आप इन बातों का खण्डन क्यों करते हैं ? क्या आप लोग अपने ईश्वर के असाता वेदनीय का उदय नहीं मानते और क्या पार्श्वपुराण भूधरकृत भाषा ग्रन्थ में अछेरे नहीं माने हैं ? अथवा वह ग्रन्थ प्रामाणिक नहीं है ?

उत्तर ४२—दिगम्बरीय ग्रन्थोंमें अछेरे कहीं नहीं लिखे, न पार्श्वपुराण में हैं; आप देख लेवें।

महावीर स्वामीका न तो गर्भपरिवर्त्तन हुआ था, क्यों कि कच्चा गर्भ एक पेटसे निकल कर दूसरे पेटमें किसी तरह नहीं जासकता और न महावीर भगवान गोशाले की तेजोलेश्यासे बीमार ही हुए थे। क्योंकि केवली भगवान पर न तो किसी प्रकार का कोई आक्रमण होता है और न बीमार ही

होते है। ऐसे अतिशय वाले नियम को श्वेताम्बरी ग्रन्थकार भी मानते हैं। रही असाता वेदनीय की बात; सो मोहनीय कर्म की सत्तामें वेदनीय कर्म दुख देता है। केवली के मोहनीय कर्मका अभाव होता है तथा उनको अनन्त सुख प्रगट होजाता है, ऐसा श्वेताम्बरी ग्रन्थकार भी मानते हैं। फिर भला असाता वेदनीय कर्मदुख कैसे दे सकता है? इसलिये केवलज्ञानीको न कोई रोग होता है, न दुख होता है और न उन पर कोई उपद्रव ही हो सकता है।

दुख सुख में से एक ही बात हो सकती है। अर्हन्त केवली को या तो दुख हो यानी वे अनन्तसुखी न हों अथवा वे अनन्त सुखी हों, इस कारण उनको कोई दुख न हो। अर्हन्तभगवान के श्वेताम्बरी भाई अनन्तसुख मानते हैं फिर भला उन को दुख कैसे हो सकता है।

प्रश्न ४३—स्त्री की मुक्ति किस कारण से नहीं होती?

उत्तर ४३—स्त्री पुरुष के समान वस्त्रादि परिग्रह छोड़ कर तपस्या नहीं कर सकती। वज्रऋषभनाराच संहनन न होने से वह तपश्चरण के समय आये हुए घोर कष्ट भी नहीं सह सकती। इत्यादि अनेक कारण हैं जिससे मुक्ति तो क्या किन्तु स्वर्गों से ऊपर ग्रैवेयक अनुत्तर आदि स्थानों में भी स्त्री नहीं जा सकती।

यानी—स्त्रियों में स्वर्गों से ऊपर जाने योग्य परीषह सहते हुए शुक्लध्यान द्वारा आत्मशुद्धि प्राप्त करने तथा सातवें

नरक जाने योग्य घोर पाप उपार्जन करनेकी शक्ति नहीं होती; ऐसा श्वेताम्बरी भी मानते हैं।

प्रश्न ४४—यदि आपके ईश्वर आहार करें तो क्या दोष है ? यदि आहार करने से ईश्वरत्व नष्ट होता है तो शरीर के अन्य धर्मों से भी क्यों नहीं नष्ट होता।

उत्तर ४४—जब हमारे ईश्वर को भूख ही न लगे तो भोजन क्यों करें ?

मोहनीय कर्म छूट जाने से अर्हन्त भगवान को अनन्त-सुख प्रगट हो जाता है। इस कारण न उनको भूख लगती है और न वे भोजन ही करते हैं। बिना भूख लगे आपका ईश्वर ही क्यों नहीं खा पी लेता ? कहीं ईश्वर भी भोजन किया करते हैं ?

प्रश्न ४५—आप लोग जो अपने ईश्वर को नित्य स्नान कराते हो, सो किस अवस्था की अपेक्षा कराते हो ? यदि कहो जन्मकाल की अपेक्षा कराते हैं तब तो कृपा कर, गहना आदि भी पहना दिया करो और यदि योगावस्था की अपेक्षा से कराते हो तो क्या योगावस्था में भी आपके ईश्वर स्नानादि करते थे ? यदि कहो कि केवल भक्ति से कराते हो तो भी किसी भक्ति से वस्त्र पहनाने में ही क्या अधिक दूषण होता है।

उत्तर ४५—जैनधर्म एक वीतराग धर्म है। वीतराग (रागद्वेष आदि दुर्गुणों से सर्वथा छूटा हुआ) जीवन्मुक्त

परमात्मा ही इस धर्मका चलाने वाला है। उसके अनुयायी ऋषिगण भी वीतरागता का पूर्ण अनुकरण करते हैं। इसी कारण सांसारिक पदार्थों से मोह हटाने के लिये वे धन, घर, मित्र, पुत्र, परिवार यहां तक कि अपने शरीर के कपड़े तकको छोड़कर अखंड ब्रह्मचर्य की मूर्ति बनते हुए छोटे बालक के समान निर्विकार होकर तपस्या करते हैं। जैनगृहस्थ भी वैसी परमशान्त, निर्मोह, वीतराग दशाको प्राप्त करने के लिये अपने सामने उन वीतराग अर्हन्त परमात्मा की प्रतिमा का आदर्श रखता है। उन सरीखा होने के लिये तथा अपने मनको शान्त शुद्ध करने के लिये उस प्रतिमा का दर्शन पूजन आदि करता है। यदि उस प्रतिमा को वस्त्र आभूषण पहना कर सुशोभित कर दिया जावे तो फिर आदर्श बिगड जाता है और फिर उस सजी हुई प्रतिमा से वीतरागता की शिक्षा नहीं मिल सकती। इस कारण वस्त्रआभूषण पहनना न केवल व्यर्थ है, किन्तु वीतराग आदर्श को भी बिगाड़ देना है।

श्वेताम्बरी शास्त्रों में भी वस्त्र आभूषण पहनाने का कहीं विधान नहीं और न उनके मतानुसार अर्हन्तपरमात्मा कोई वस्त्रआभूषण पहने होते है, किन्तु फिर भी कुछ दिनों से श्वेताम्बरी भाई अपने आपको वीतरागताका उपास्य मानकर भी अरहन्त प्रतिमा को वस्त्राभूषणों से सजाकर रामचन्द्र, कृष्ण आदि मूर्तियों के समान न जानें क्यों बना देते हैं?

रही स्नान कराने की बात, सो हमारे यहां पूजा विधान

में अभिषेक, आह्वान, संस्थापन, सन्निधीकरण पूजन और विसर्जन ये ६ बातें आवश्यक बतलाई हैं। तदनुसार हम अभिषेक करते हैं। अभिषेक करने से प्रतिमा की वीतरागता में कोई अन्तर नहीं आता।

यदि अभिषेक न करावें तो धूल, गर्द आदि से प्रतिमा पर मैल जम जावे, जिससे प्रतिमा की वीतरागता में अन्तर आजावेगा। इस कारण भी प्रतिदिन अभिषेक कराना आवश्यक है।

प्रश्न ४६—पुष्पादिकों से भगवान की पूजा करने में हिंसा है या नहीं? यदि होती है तो आपका अहिंसामय धर्म नहीं रहता और यदि नहीं होती तो किस प्रकार?

हिंसाओं से बचने के लिये सावधानी से प्रवृत्ति करने का उपदेश है; किन्तु त्याग चौथी संकल्पी हिंसा का ही है। जैसा कि जैनी लोग करते हैं।

पूजन करने के लिये जैन लोग न तो कोई ज़रा भी संकल्पी हिंसा करते हैं और न वैसा करने का उनको उपदेश ही है। फूल जो अपने आप टूट पड़ते हैं उनको लाकर उनसे पूजन करने में हिंसा कैसे हो सकती है ? गृहस्थ जैन त्रस जीवों की हिंसा का त्यागी होता है, न कि स्थावर जीवों की हिंसा का। इस कारण कोई दोष नहीं।

जो गृहस्थ सचित्त त्यागी होते हैं तथा जो फूल चढ़ाना अच्छा नहीं समझते, वे फूल नहीं भी चढ़ाते हैं। उनके स्थान पर सूखे फूल या रंगे हुए चांवल चढ़ाते हैं।

प्रश्न ४७—त्रैलोक्यसार में स्त्री की मुक्ति मानी है। यथा—

वीस नपुंसक वेया इत्थी वेया य हुति चालीसा।
पुंवे आ अड़याला सिद्धा इकंमि समयम्मि॥

अर्थात्—२० नपुंसक, ४० स्त्री, ४८ पुरुष, इस प्रकार एक समय में १०८ सिद्ध (ईश्वर) हुए हैं; तो आप स्त्री-भवमें मुक्ति का निषेध क्यों करते हैं ?

उत्तर ४७—वेद दो प्रकार के माने हैं; एक भाववेद, दूसरा द्रव्यवेद। मनके भीतर जो स्त्रियों सरीखे कायरता के भाव होते है, वह भाव-स्त्री-वेद है। मनमें हिजड़ों सरीखे

ख़यालात रहना भाव-नपुंसक-वेद है और मनमें पुरुषार्थ के साहसी भाव रहना भाव-पुरुष-वेद है। शरीर पर लिंग, योनि आदि चिन्ह होना द्रव्य-पुरुष, द्रव्य-स्त्री, द्रव्य-नपुंसक-वेद है। हमारे जैन आचार शास्त्रों में यह विधान है कि पूर्णमहाव्रत धारण करने की साधु दीक्षा केवल द्रव्य पुरुष वेद वाले यानी पुरुष को ही दी जाती है। द्रव्य स्त्री (शरीर से स्त्री) और द्रव्य-नपुंसक (हिजड़े) को साधु दीक्षा नहीं दी जाती। इसी कारण स्त्री और नपुंसक पांचवें गुणस्थान से आगे नहीं जा सकते और न मोक्ष पासकते है। श्वेताम्बरी ग्रन्थों में भी लिखा है कि तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण पद स्त्री नहीं पासकती, बारह स्वर्गों से ऊपर नही जा सकती, १४ पूर्वों का ज्ञान उसको नहीं हो सकता, ऐसा सिद्धान्त रहते हुए भी वे स्त्री को मुक्ति होना बतलाते है; यह बात अयुक्त है।

रही त्रिलोकसारकी बात सो उसका अभिप्राय आपने जैसा समझा है वैसा नहीं है। उसका अभिप्राय केवल इतना है कि मुक्तिगामी साधुओं का द्रव्यवेद तो पुरुष ही होता है। ऐसा होते हुए भी यदि आठवें गुणस्थान से श्रेणी चढ़ने के पहले किसी का भाव वेद स्त्री या नपुंसक हो तो वे भाव-स्त्री-वेद वाले और भाव-नपुंसक-वेद वाले (पुरुष) साधु अधिक से अधिक एक समय में ४० और २० मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। ख़याल रहे कि यह भाववेद भी नौवें गुण-

स्थान में मिट जाता है। इस कारण ध्यान रहे कि त्रिलोकसार का कथन भाव-वेदों की अपेक्षा है। मुक्ति पुरुष को ही होती है, स्त्री व नपुंसक को नहीं।

प्रश्न४८—आपके हरिवन्शपुराण में जब यह लिखा है कि शिर में हाथ डालते ही भरत नृपति को केवलज्ञान हो गया और द्रव्यलिंगरहित पाण्डवों ने कर्मों का अन्त किया, तो बिना दिगम्बर हुए केवलज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता, यह सिद्धान्त कहां रहा?

जा चिंहु कप्पालण खिवइ हत्थुता केवल उप्पराणो पसत्थु। —हरिवंशपुराणे।

उत्तर ४८—भरत चक्रवर्ती राज्य करते हुए भी संसार से उदास रहते थे; जैसे धाय दूसरे के बच्चे को दूध पिलाती हुई भी उस से मोह नहीं करती। इस कारण भरतचक्रवर्ती ने जिस समय राज्य, घर, परिवार छोड़कर साधुदीक्षा के लिये वस्त्र, आभूषण भी उतार दिये और उसके अनन्तर शिर का केशलोंच करने लगे, उस समय में उनके आत्मा में पहली अंकुरित वीतरागता इतनी बढ़ गई कि झट उनको केवलज्ञान होगया। भरतचक्रवर्ती ने वस्त्राभूषण उतार कर दिगम्बर वेष बना लिया था; उसके पहले उनको केवलज्ञान नहीं हुआ।

शीघ्र केवलज्ञान होने की यह बात है कि यह तो एक परीक्षा का पास करना है; जैसे कि आजकल ऐसे विद्यार्थी भी देखे जाते हैं जो सिर्फ एक रातमें दो सौ; ढाई सौ श्लोकों

के ग्रन्थको याद करके प्रात काल परीक्षा देने पर अच्छे नम्बरों में पास हो जाते हैं। ऐसी ही बात भरतचक्रवर्तीके लिए है।

पाण्डवों ने भी दिगम्बर होकर साधुदीक्षा ली थी। ध्यान करते समय उन के शत्रुने लोहे के कड़े आगसे खूब गर्म करके उनको पहना दिये थे। इस घोर उपद्रव से युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम बिलकुल विचलित न हुये और उन्होंने आत्म-ध्यान को नहीं छोड़ा, जिस से कि वे मुक्त हो गये। नकुल, सहदेव उतने दृढ़ न रह सकने के कारण मुक्त न हो सके।

किसी भी दिगम्बरीय शास्त्र में यह उल्लेख नहीं है कि भरतचक्रवर्ती ने तथा पाण्डवों ने बिना दिगम्बर दीक्षा लिये मुक्ति पाई हो।

आप दिगम्बरीय आदिपुराण, हरिवन्शपुराण और पाण्डवपुराण को देखिये। इस कारण हमारा सिद्धान्त ज्यों का त्यों है। हरिवंशपुराण के वाक्यका ज़रा अर्थ तो लगाइये; इस से आपका अर्थ सिद्ध नहीं होता।

प्रश्न ४६—ऋषभदेव भगवान का शरीर ५०० धनुष लम्बा था तो मोटा कितना था?

उत्तर ४६—पांच सौ धनुष क़दमें जो ठीक मोटाई होनी चाहिये उतना मोटा उनका शरीर था। इस प्रश्न से न जाने आपने कौनसी खोज की है। स्वामी दयानन्दजी कितने ऊंचे कितने चौड़े और कितने मोटे तथा कितने वज़नदार थे जोकि अभी सिर्फ़ ५० वर्ष पहले हुए हैं बतलाइये? मनुष्य के क़दका

सब कोई उल्लेख करता है, मोटाई को प्रायः कोई नहीं लिखता। स्वामी कर्मानन्दजी को ये ही शङ्का उठ आई।

प्रश्न ५०—और एक धनुष ४ हाथ का होता है तो वह हाथ हमारे और आपके हाथ से होता है अथवा ऋषभदेवजी के हाथ से; यदि हमारे तुम्हारे हाथ से तब तो इतना मोटा हाथ उस समय होता ही नहीं था और उनके हाथसे तो इस समय के माप से ठीक बतलावें कि उनका शरीर कितने मील का था? ताकि आपके वैज्ञानिक मत से जनता को ज्ञान प्राप्त हो सके।

उत्तर ५०—प्रश्न का अङ्क देते हुए भी प्रश्न के प्रारम्भ में 'और' शब्द लिख दिया यह भी खूब साहित्यका चमत्कार दिखलाया। यदि दोनों प्रश्न एक प्रश्नके रूपमें लिख दिये जाते तो शायद आपके सेकड़े की शान टूट जाती। अस्तु।

भगवान ऋषभदेव का शरीर न तो आपके हाथके नाप से था और न मेरे; क्योंकि आप ठिंगने हैं आपका हाथ छोटा है और मेरा बड़ा है। उनके शरीर का नाप उनके हाथ से भी नहीं था जो आपको शंकाका अवसर मिल सके। उनके शरीर का नाप सैद्धान्तिक नाप से था जोकि इस तरह है—

आठ सरसों का = एक जौ, आठ जौका = एक अंगुल, चौबीस अंगुलका = एक हाथ; चार हाथका = एक धनुष।

अब आप—सारा हिसाब लगा लीजिये।

प्रश्न ५१—और उनकी आयु थी ८४ लाख वर्ष पूर्वकी,

तो ज़रा हिसाब लगा कर जनता को बतलावें कि यह आयु कितने वर्ष की हुई ?

उत्तर ५१—यहां भी आपने हिन्दी साहित्य का अनोखा नमूना रख दिया। अस्तु! ८४ लाख वर्षका एक पूर्वाङ्ग होता है और ८४ लाख पूर्वाङ्ग का एक पूर्व होता है। अब आप हिसाब लगा लीजिये।

प्रश्न ५२—कर्म जड़ हैं या चेतन; यदि जड़ हैं तो वे चेतन जीवको फल किस प्रकार दे सकते है? यदि चेतन हैं तो आपके सिद्धान्त की हानि है।

प्रश्न ५३—अमुक कर्म का अमुक फल होना चाहिये; इस प्रकार का ज्ञान कर्मों को है या नहीं? यदि है तो किस प्रकार; यदि नहीं है तो न्यूनाधिक फल मिलेगा।

प्रश्न ५४—संसारमें यह नियम है कि जब तक किसी ज्ञानवान सत्ता के ज्ञान में यह निश्चय न हो जाय कि इस ने यह कर्म अवश्य किया है और इसका यह फल मिलना चाहिए, तब तक कर्मफल नही मिलता; यथा मजिस्ट्रेट?

प्रश्न ५५—कर्म का फल स्वयं होने में जो आप भङ्ग का दृष्टान्त देते हो सो किस प्रकार आप के पक्षमें घटता है? क्योंकि जो मनुष्य प्रथम वार ही भङ्ग पीता है उस को थोडी सी भङ्ग भी अधिक नशा करती है और अभ्यासी होने पर बहुत सी भङ्ग भी थोड़ा नशा करती है; तो क्या जैनधर्म अधिक पाप करने का अभ्यासी होने की शिक्षा देता है।

प्रश्न ५६—कर्म आत्मा को फल भोगने के लिये विवश करते है या आत्मा स्वयं फल भोगने को आता जाता है ?

उत्तर—५२-५३--५४--५५--५६—ये पाँचों प्रश्न एक आशय के हैं। अच्छा होता यदि ये पांच न लिखकर एक ही प्रश्न के रूप में लिख दिये जाते। अस्तु, हम इन का इकट्ठा उत्तर दिये देते हैं।

इस समस्त लोकाकाशमें कार्माण नामक पुद्गलीय जड़ स्कन्ध भरे हुए हैं। जीवमें एक योगशक्ति होती है जो मन वचन शरीर की क्रिया होने पर उन कार्माण स्कन्धोंको अपनी ओर खींच लेती है। उन कार्माण स्कन्धों के खिच आने पर जीव के उस समय जैसे भाव या जैसी अच्छी बुरी क्रिया होती है उसी प्रकार अच्छा बुरा करने का असर उन कार्माण स्कन्धों में पैदा हो जाता है और उसी समय जीव के साथ रहने की मियाद भी उनमें पड जाती है। कुछ समय पीछे जिस समय उनका नम्बर आता है जीव में अपने अच्छे बुरे असर के अनुसार फल पाने के लिए क्रिया पैदा करा देते हैं। अर्थात् उन कर्मों के असरसे जीव ऐसा कार्य कर बैठता है जिससे उसको वैसा अच्छा या बुरा फल मिल जाता है।

जैसे कोई मनुष्य शराब पीलेवे। कुछ समय पीछे उस जड़ शराब का यह असर होगा कि उस बहुत पढ़े लिखे विद्वान को भी पागल होना पड़ेगा।

यह शराब का दृष्टान्त केवल इतने ही अन्श में लेना

चाहिये। 'अभ्यासी होजाने पर कम असर करती है', इतना आगे न बढ़िये; क्योंकि दृष्टान्त के सारे धर्म दार्ष्टान्त में नहीं आजाते। इस कारण जीव चाहे पाप का अभ्यासी हो या न हो, जैसे तीव्र-मन्द भावों से बुरा कार्य करेगा, तदनुसार बँधने वाले पाप कर्म में भी तीव्र मन्द रस पड़ेगा। इस कारण जैनधर्म पाप करने का उपदेश नहीं देता। असली सत्यार्थ-प्रकाश (पहला ऐडीशन) ही मछली, पक्षी मार खाने तथा बन्ध्यागाय को मारकर हवन करने का उपदेश देता है।

जड कर्मोंद्वारा ही जीव को फल मिलता है, इस का खास एक यह अकाट्य प्रमाण है कि फल मिलते समय जीव को पता नहीं चल पाता कि उस को किस अपराध या अच्छे कार्य का फल मिल रहा है। यदि कोई ज्ञानवान फलदाता हो तो मजिस्ट्रेट के समान फल देते समय वह उस जीव को बतला देता कि तूने अमुक काम किया था उस का यह फल तुझ को दिया जाता है।

अनेक जड़ औषधियाँ (दवाएं) एक साथ खा लेते हैं उन को जड़ होने से पता नहीं कि पेट में पहुँच कर हम को क्या २ करना है, किन्तु फिर भी अपनी अपनी शक्ति के अनुसार कोई औषध खांसी हटाती है, कोई मल निकालती है, कोई बुखार हटाती है। इसी प्रकार ज्ञान रहित होने पर भी कर्म अपनी शक्तिअनुसार ठीक फल दे देते हैं।

स्वामी कर्मानन्द जी ईश्वर को कर्मफलदाता सम-

भते हैं सो ग़लत है, क्योंकि जो स्वयं निराकार अशरीर है वह दूसरे को फल किस प्रकार दे सकता है ? अमूर्तिक निराकार वस्तु मूर्तिक पदार्थ में किसी प्रकार भी हलचल, प्रेरणा नहीं कर सकती। ईश्वर यदि अन्य जीवों के द्वारा जीवों को उनके कर्मों का फल दिलाता है तो संसार में जितने पाप, अन्याय, अत्याचार, हिंसा, क़त्ल, चोरी, धोखेबाज़ी आदि बुरे काम हो रहे हैं, सब ईश्वर की प्रेरणा से दूसरों को सज़ा देने के मतलबसे हो रहे हैं, यह अवश्य मानना पड़ेगा। स्वामी कर्मानन्द जी इसको नामञ्जूर नहीं कर सकते ऐसी दशा में संसार में अपने आप पाप करने वाला कोई न हुआ। सब कुछ ईश्वर की प्रेरणा से बतौर एक पुलिस या जेल अफ़सर के सारे बुरे कार्य हुए। अर्थात्-पाप करने वाला भी पापी न हुआ, क्योंकि वह तो ईश्वर की प्रेरणा से दूसरे जीव को सज़ा देने के लिये वैसा काम करता है।

तब यदि एक क़साई बध करने के लिये एक गाय लिये जा रहा है तो किसी भी आर्यसमाजी को उसे छुड़ाने का उपाय नहीं करना चाहिये, क्योंकि ईश्वर ने गाय के पास उसके कर्मों का फल भुगाने के लिये उस क़साई को भेजा है। इसमें रुकावट डालना मानो ईश्वर के न्याय में ख़लल डाल कर परमेश्वर का अपराधी बनना है।

इसके सिवाय स्वामी कर्मानन्दजी का ईश्वर दयालु, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान भी है। ऐसी दशामें वह ईश्वर पहले

से ही "अमुक जीव अमुक बुरा कार्य करेगा उसकी अमुक सज़ा मुझे उसको देनी पड़ेगी" ऐसा सब कुछ जानता हुआ भी उस पाप करने वाले जीव को पहले ही अपनी शक्ति से क्यों नहीं रोक देता। जैसे, यहां पहले मालूम हो जाने पर मजिस्ट्रेट रोक देता है। पहले पाप कर लेने देना पीछे दण्ड देना यह अन्यायी तथा निर्दय का काम है या नहीं?

यदि आर्यसमाज के माने मुआफिक़ सचमुच ईश्वर ही न्यायी, दयालु, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान होता हुआ कर्मों का फलदाता होता तो भला संसार में एक मिनट भी अन्याय, अत्याचार रह पाते।

इस कारण सिद्ध होता है कि कर्म ही फल देते हैं, ईश्वर नहीं देता। इस विषयका विशेष खुलासा "जैनकर्मसिद्धान्त" पुस्तक में किया है जो कि "जैन सभा-अमरोहा (मुरादाबाद)" से मिलती है। उसको देखें।

महानुभाव! आप तो कर्ममें ही आनन्द मानकर उसके स्वामी बने बैठे हैं; फिर इस कर्मव्यवस्था में क्यों भूलते हैं?

प्रश्न ५७—अमुक कर्म पाप हैं और अमुक कर्म पुण्य हैं, यह आत्मा किस प्रकार जानता है?

उत्तर ५७—आत्मा में ज्ञानशक्ति है। इस कारण कभी तो वह पूर्वभव के संस्कार से स्वयं समझ लेता है, कभी शास्त्रों को देखकर और कभी गुरू का उपदेश सुनकर पाप पुण्य समझ लेता है।

प्रश्न ५८—जब ऋषभदेवादि आपके तीर्थङ्कर उत्पन्न नहीं हुए थे उस समय मनुष्य धर्माधर्म करते थे या नहीं। यदि करते थे तो उन्होंने धर्माधर्म को किस प्रकार जाना था? यदि नहीं करते थे तो फल किस प्रकार प्राप्त होता था?

उत्तर ५८—मनुष्य हो क्या पशु पक्षी आदि भी दो प्रकारके ही कार्य करते हैं—हिंसा आदि अधर्मरूप या अहिंसा आदि धर्मरूप। जो जैसा कार्य करता है कर्मों द्वारा उस को वैसा ही फल मिलता है चाहे वह उसको जाने या न जाने। हां इतना अवश्य है कि जो कार्य जान बूझकर किया जाता है उसका फल अधिक मिलता है, जो बिना जाने अज्ञान दशा में होता है उसके द्वारा बान्धे हुए कर्ममें मंदा असर पड़ता है और उसका फल थोड़ा मिलता है।

ऋषभनाथ के सिवाय अन्य तीर्थङ्करों के पहले पीछे भी उपदेशक साधु ऋषि होते रहे हैं जो लोगों को उपदेश देते रहते थे। इस युग में भगवान ऋषभदेव से पहले कोई धर्म प्रचारक नहीं हुआ; इस कारण उनसे पहले यथार्थ धर्म का प्रचार भी नहीं था। जैसा कुछ करते थे वैसा कर्म बांधते थे।

प्रश्न ५९—आपके तीर्थंकरों ने किस प्रकार जाना कि यह धर्म है और यह अधर्म है। यदि किसी के उपदेश से तब तो अनवस्था दोष आजावेगा, और यदि स्वयं जान लियातो और भी जीव जान लेंगे। आपके तीर्थंकरों की क्या आवश्यकता है?

उत्तर ५६—जो तीर्थंङ्कर होते हैं वह पहले भवमें तपस्या करके अपने आत्मा को यथार्थज्ञान से संस्कृत कर लेते हैं। इसी कारण उस संस्कार के निमित्त से वे तीर्थंकर के भवमें विना किसी दूसरे के उपदेश से धर्म अधर्म जानते हैं। फिर भी तपस्या करके ज्ञानशक्ति को पूर्ण बढ़ा लेते हैं तब दूसरों को उपदेश देते हैं। ऐसा अतिशय ज्ञान अन्य किसी साधारण मनुष्य में नहीं होता।

स्वामी दयानन्द जी को विरजानन्द जी ने साइन्स की नोक झोक वाला नई शैली का वेदभाष्य नहीं पढ़ाया था। वह भाष्य और सत्यार्थप्रकाश दयानन्द जी ने अपने दिमाग से लिखा था। फिर तीर्थङ्करों के अतिशय ज्ञान का तो कहना ही क्या है?

प्रश्न ६०—जब कि आपके यहां दो प्रकार के जीव माने गये है। १–भव्य जिनकी मुक्ति हो जायगी और २–अभव्य जिनकी मुक्ति नहीं होने की। तो भव्यों की मुक्ति तो स्वयं बिना उपदेश के भी हो जायगी क्योंकि उनकी मुक्ति आपके सिद्धान्तानुकूल होनी ही है और अभव्य के लिये उपदेश व्यर्थ है, क्योंकि उनकी मुक्ति तो होनी ही नहीं है। पुनः आपके शास्त्र और उपदेश किसके लिये?

उत्तर ६०—इस प्रश्न में स्वामी जी ने अपना दिमाग़ खूब लड़ाया, तमाम जैन शास्त्रों को ही व्यर्थ ठहरा दिया। स्वामीजी महाराज! आपको भोजन तो मिलना ही है क्योंकि

आपके परमात्माकी आप सरीखे स्वामियों पर इतनी कृपा तो है ही; फिर आप आर्य-मन्दिरमें ही बैठे रहें; हाथ पैर बिलकुल न हिलावें भोजन अपने आप आपके पेट में पहुँच जायगा।

महाशयजी! बतलाइये तो सही कि बिना कुछ किये-कराये भव्य जीवोंको अवश्य मोक्ष हो ही जायगी, यह किस जैन शास्त्र में लिखा है। जो स्त्री वन्ध्या न होवे तो क्या वह स्त्री ब्रह्मचर्य से रहती हुई भी गर्भवती होकर पुत्र पैदा कर लेगी। भव्य जीवों को मुक्ति होगी तब, जबकि वे उपदेश पाकर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र हासिल करेंगे, यों ही अपने आप बिना कुछ धर्म कर्म किये तो वे अच्छा मनुष्य शरीर भी नहीं पा सकते।

अभव्य जीव भी यदि मुक्ति नहीं पासकते तो शास्त्रों के उपदेशानुसार चलने से उनको सांसारिक सुख और शान्ति तो प्राप्त होगी। जिस रोगी का रोग असाध्य हो, किन्तु औषधखाने से वह शान्त हो जाता हो, बेचैनी-व्याकुलता पैदा न करता हो, ऐसी दशा में क्या उसकी औषध करना व्यर्थ है? इसी प्रकार अभव्य के विषय में समझ लीजिये।

प्रश्न ६१—जब आप के १४ प्रकीर्णक लिखने में नहीं आते तो वे किस प्रकार वर्त्तमान रहते हैं। क्या कण्ठस्थ परम्परा से; क्या अब भी किसी को कण्ठस्थ हैं? यदि नहीं हैं तो वे किस रूप में वर्त्तमान हैं। यदि वर्त्तमान नहीं हैं तो उनकी विशेष ज्ञानी को व्युत्पत्ति किस प्रकार होती है?

उत्तर ६१—हमारे चौदह प्रकीर्णक लिखनेमें नहीं आते यह आप के कान में किसने कहदिया था आपको अपने आप ही कोई ऐसा दिव्य ज्ञान पैदा हो गया? आपको मालूम होना चाहिये कि जब तक जैनऋषि अपने शिष्यों की बुद्धि मौखिक पढ़ाने पर पाठ कंठस्थ करने योग्य देखते हैं तब तक मौखिक पढ़ाते है जब बुद्धि की हीनता होती देखते हैं तब शास्त्ररचना करते हैं। तदनुसार दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, प्रतिक्रमण आदि प्रकीर्णक ग्रन्थों की भी रचना हुई है। आप भूल में न रहें।

प्रश्न ६२—तैजस आहारकादि शरीरों के होने में क्या प्रमाण है?

उत्तर ६२—हमारे तुम्हारे शरीरपर जो चमक दिखाई देती है जो कि मुर्दा शरीर में नहीं होती वह तैजस शरीर है। औदारिक शरीर हमारा यह स्थूल शरीर है ही। कार्माण शरीर तो प्रत्येक संसारी जीवके साथ होता है, जिसके कारण संसार में भटकना पड़ता है। वैक्रियिक शरीर देव, नारकी और ऋद्धिधारक मनुष्यों के होता है। आहारक शरीर किसी किसी ऋद्धिधारक छठे गुणस्थान वाले मुनि के होता है। योगाभ्यासी साधु ज़मीन पर बैठे हुए उङ्गली से सूर्य, चन्द्र छू सकते हैं। देवों का विलक्षण दिव्य शरीर होता है ऐसा आपके योगदर्शन में भी है।

आज कल प्रेतविद्याविशारद विद्वान् तथा मैकसमेरेज़्म

के अभ्यासी अपने प्रयोगों से बतला रहे है कि मनुष्य और पशुयोनि के सिवाय अन्य देवयोनिभी है जिसका शरीर हमारे तुम्हारे शरीरों से भिन्न प्रकारका होता है। इससे सिद्ध होता है कि वैक्रियिक आदि शरीर अवश्य हैं। योगदर्शनकी प्राचीन टीका देखिये आपका भ्रम उड जायगा।

प्रश्न ६३—जब तीर्थंकर की माता जी रजस्वला ही नहीं होती थीं तो उन के सन्तान कैसे उत्पन्न हुई।

उत्तर ६३—स्त्रियों का रजोधर्म प्रति मास दूषित रक्त शरीर से बाहर निकालनेके लिये होता है। तीर्थंकरोंकी माता के शरीर में ऐसा दूषित रक्त नहीं होता जिससे वे रजस्वलाभी नहीं होतीं। किन्तु गर्भाशय में गर्भधारण योग्य रक्त विद्यमान होता है, इस कारण उनको गर्भाधान होकर प्रसूति होजाती है।

चरक आदि वैद्यक ग्रन्थ देखिये, उन में स्पष्ट लिखा है कि विना रजस्वला हुये भी स्त्री गर्भ धारण कर सकती है।

प्रश्न ६४—जब आपके ग्रन्थों में अन्तरजातीयविवाह के अनेक उदाहरण मोजूद हैं तो आप लोग आज इसका व्यवहार क्यों नहीं करते ?

—आदि पु० पर्व १६ श्लोक २४१

उत्तर ६४—यह भी आपने अजब प्रश्न किया, हम आप से ही पूछते हैं कि आपके यहाँ नियोग धर्मानुकूल होने पर भी वह आपके यहां व्यवहार में क्यों नहीं लाया गया ?

सैकडों आर्यसमाजी स्त्री पुरुष ऐसे है जिनके सन्तान

नहीं हुई है, वे यदि अन्य पुरुष, स्त्री के साथ नियोग करलें तो इच्छापूर्ति कर आर्य-जनगणना बढ़ सकती है। अपने उत्तरसे हमारा उत्तर मिला लेना।

प्रश्न ६५—प्रत्येक अवसर्पिणी के चौथे काल में और उत्सर्पिणी के तीसरे कालमें ही २४ तीर्थङ्कर क्यों जन्मते हैं। पहले पीछे क्यों नहीं?

उत्तर ६५—तीर्थङ्कर कर्मभूमि में उत्पन्न होते हैं यानी जिस समय मनुष्य असि, मसि, कृषि, शिल्प वाणिज्य आदि कार्यों से आजीविका करने लगते हैं उस समय धार्मिक मार्ग चलाने के लिये तीर्थङ्करों का जन्म होता है। उत्सर्पिणी के चौथे, पांचवें, छठे कालमें तथा अवसर्पिणी युगके प्रथम, द्वितीय, तृतीय कालमें उत्तम, मध्यम, जघन्य भोगभूमि होती हैं। उस समय समस्त मनुष्य कल्पवृक्षों द्वारा सुलभ-प्राप्त भोगोपभोग साधनोंमें लीन रहते हैं। किसी को कोई दूसरी चिन्ता, या खयाल नहीं होते। इस कारण तो उस समय तीर्थंकरों का जन्म नहीं होता।

और, उत्सर्पिणी युगके पहले दूसरे कालमें तथा अवसर्पिणी युग के पांचवें छठे कालों में मनुष्यों का शारीरिकबल बुद्धिबल आदि घट जाता है; मुक्ति प्राप्त करने योग्य नहीं रहता। इस कारण उन कालोंमें तीर्थंकरोंका जन्म नहीं होता।

प्रश्न ६६—इस समय की अवधि में २४ ही तीर्थंकर क्यों होते हैं, न्यूनाधिक क्यों नहीं होते?

उत्तर ६६—"अब्धि" का अर्थ तो समुद्र है। तीर्थंकर समुद्र में तो पैदा नहीं होते। स्वामीजी महाराज यह क्या अंट संट लिख गये। अस्तु।

उस समय तीर्थंकर २४ ही होते हैं, क्योंकि समयानुसार उतने ही तीर्थंकरों के होने की आवश्यकता है। इस कारण स्वाभाविक नियम है कि तीर्थंकर २४ से कम या अधिक नहीं होते—स्वाभावोऽतर्कगोचरः।

वेद चार ही क्यों हुए? मनुष्य के चार टांग, चारों ओर आठ आंखें क्यों नहीं हुईं, सोने में सुगन्ध क्यों न हुई? आपका ईश्वर भूल गया।

प्रश्न ६७—जब आपके तीर्थंकर पूर्व ही से पूर्णज्ञानी होते हैं तो सबको कुमारावस्था में ही वैराग्य क्यों नहीं उत्पन्न हुआ।

उत्तर ६७—महाशय जी! आपको किसने बहका दिया है कि तीर्थंकर पहले से ही पूर्णज्ञानी होते हैं। वे बहुज्ञानी तो अवश्य होते हैं, किन्तु पूर्णज्ञानी घर बार छोड़कर जब तपस्या करते हैं तब अर्हन्तदशा में हो पाते हैं। पहले तो पूर्णज्ञान का लाखवें भागमात्र भी ज्ञान नहीं होता। हां जन्म से ही अवधिज्ञान होने के कारण अन्य मनुष्यों से विशेषज्ञानी अवश्य होते है।

सो जबतक उनके प्रत्याख्यानावरण नामक मोहनीय कर्मका उदय रहता है तबतक घर परिवार में प्रेमभाव रहने

से वैराग्य उन्हें नहीं हो पाता। जिस समय वह कर्म हट जाता है तब उन्हें वैराग्य होता है। ज्ञान दूसरा गुण है और चारित्र (सच्चा अमल) दूसरा ही गुण है। संसार की विनाशीक दशाको जानते हुए बड़े भारी विद्वान होकर भी सब कोई आप सरीखे स्वामी नहीं हो जाते। जब मोह कम होता है वैराग्य तब ही उत्पन्न होता है।

प्रश्न ६८—जब इन्द्रादि देव स्वर्ग से यहां आते हैं तो यहां का जलवायु उनके अनुकूल होता है या प्रतिकूल।

उत्तर ६८—अगर आप वैद्य और वैज्ञानिक हों तो उस समय उनकी जांच कर लीजियेगा। स्वर्ग से यहां आकर कभी किसी देवको जुकाम, खांसी, ज्वर नहीं हुआ। यदि आप वहां जावेंगे तो आपकी भी तबियत ख़राब न होगी, यह आप निश्चय रक्खें और चिन्ता न करें। स्वामीजी महाराज! आपके ख़याल में भी बड़ा भारी जटिल, लायक़ तारीफ़ प्रश्न पैदा हुआ। धन्य है! प्रश्नों का सैकड़ा ऐसे ही पूरा करना था?

प्रश्न ६९—जब तीर्थङ्कर भगवान माता के गर्भ में आते हैं तो उनकी माता जी को प्रसवसमय कष्ट होता है या नहीं?

उत्तर ६९—तीर्थङ्कर भगवान के प्रसव समय तीर्थङ्कर की माताजी को प्रसूति-कष्ट बिलकुल नहीं होता। आजकल भी ऐसी अनेक स्त्रियां होती हैं जिनको रास्ते चलते चलते बिना किसी कष्टके प्रसूति हो जाती है। प्रत्यक्ष देखी हुई बात

है। फिर तीर्थङ्कर की माता बहुत भारी सौभाग्यशालिनी होती है।

प्रश्न ७०—तीर्थङ्कर भगवान के गर्भ में आने से ६ मास पूर्व ही इन्द्र रत्नों की वर्षा उसी घर में क्यों करने लगता है। और उसको किस प्रकार ज्ञान प्राप्त हुआ कि अमुक के यहां तीर्थंकर भगवान उत्पन्न होंगे।

उत्तर ७०—इन्द्र अपने अवधिज्ञान से जान लेता है कि ६ मास पीछे अमुक घर तीर्थंकर महाराज उत्पन्न होंगे। इस कारण वह बतौर स्वागत के भक्ति वश उस घरमें रत्नवर्षा करता है।

प्रश्न ७१—इन्द्र देवता तीर्थंकरों के पिताके घर में जो रत्नवर्षा करता है, यह उन के कर्मों का फल है अथवा इन्द्र बिना ही कर्मों के दया करके वर्षाता है। यदि कर्मों का फल हैं तो इन्द्र की आवश्यकता क्या है—आपके मतानुसार कर्म स्वयं फल देदेंगे—और यदि बिना कर्मफल के तो आपके सिद्धान्त की हानि है।

उत्तर ७१—दया अपने से हीन, आपत्तिग्रस्त जीवपर की जाती है। तीर्थङ्करों में ये दोनों बातें नहीं, इस कारण आप इन्द्र की दया का ख़्याल तो एक दम हटा दीजिये। फिर कैसे? इस का उत्तर यह है कि तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता से यह सब महत्वशाली विशेष कार्य होता है। कर्मफल अपने आप देते हैं उस का अर्थ यह है कि विना किसी ईश्वर आदि

की प्रेरणा के अपने स्वभाव के अनुसार किसी निमित्त द्वारा फल दिलाते हैं। अर्थात् तीर्थंकर प्रकृति का प्रभाव इन्द्र के हृदय में ऐसा स्वागत कराने के लिये भक्तिभाव उत्पन्न कर देता है। इस कारण तीर्थङ्कर के माता पिता के घर इन्द्रद्वारा रत्नवर्षा होना तीर्थङ्कर प्रकृति की सत्ता का कार्य है।

प्रश्न ७२—आप के तीर्थङ्कर बिना आधार के आकाश में किस प्रकार चलते और बैठते हैं।

उत्तर ७२—तीर्थङ्कर भगवान तपस्या करते हुए जब ४ घातीकर्म नष्ट करके अर्हन्त यानी-जीवनमुक्त हो जाते हैं तब उन के शरीर में यह अतिशय चमत्कार प्रगट होता है कि वे निराधार आकाश में ठहरते हैं। जैसे आजकल भी कुछ एक योगाभ्यासी या मैस्मरेजम के अभ्यासी अपने शरीर पर ऐसा चमत्कार सब मनुष्यों को प्रत्यक्ष दिखला देते हैं कि ज़मीन से ६-७ फीट ऊँचे आकाश में पहले लाठियों के सहारे फिर कुछ समय पीछे बिना लाठियों के निराधार ठहर जाते हैं। मनुष्यों ने उनके ऊपर नीचे इधर उधर अच्छी तरह देख लिया, कुछ भी सहारा नहीं होता। यह चमत्कार एक मनुष्य कुछ दिन पहले बहुत शहरों में दिखला चुका है। फिर तीर्थंकर तो तपोबल में और अतिशयों में ऐसे योगाभ्यासियों से बहुत बढ़े चढ़े होते हैं।

प्रश्न ७३—यदि तीर्थंकर सशरीर बिना आधार के ठहर सकते हैं तो सिद्धशिला की क्या आवश्यकता है ?

उत्तर ७३—पूर्णमुक्त होजाने पर तीर्थंकर भगवान सिद्ध शिला पर ठहरते हैं, यह आपको किसने कह दिया है। सिद्ध-शिला पर तीर्थंकर ही क्या कोई भी मुक्त जीव नहीं रहता। मुक्त जीव सिद्धशिला से बहुत ऊपर तनुवातबलय में सबसे ऊपर निराधार रहते हैं।

प्रश्न ७४—आपके तीर्थङ्कर भगवानका उपदेश अपनी अपनी भाषामें सब पशु पक्षी समझ लेते हैं तो उनकी उसी शरीर से मुक्ति होती है या नहीं। यदि नहीं तो दर्शन का क्या लाभ है ?

उत्तर ७४—केवल उपदेश सुनने से ही किसी को मुक्ति नहीं हो जाती; मुक्ति प्राप्त करने के लिये कुछ आचरण भी करना पड़ता है। उपदेश सुनने से उनको पाप त्याग करने तथा धर्म आचरण करने का ख़याल पैदा होता है उसके अनुसार थोड़ा कुछ करते भी होंगे, किन्तु मुक्ति प्राप्त करने योग्य तप-श्चरण करने, ध्यान समाधि लगाने का योग्य अवसर पशु पक्षियों को प्राप्त नहीं है इस कारण उनको मुक्ति नहीं होती। आपके यहां भी वेदमंत्र सुनने मात्रसे, औरोंकी बात तो छोड़िये, आप सरीखे संन्यासी स्वामियों को भी मुक्ति क्यों नहीं होती ?

प्रश्न ७५—आपके ईश्वर उपदेश करते हैं तो शब्दो-च्चारणरूप क्रिया विना इच्छा से किस प्रकार होती है ? यदि किसी और प्रकार करते हैं तो उसका प्रकार बतलावें।

उत्तर ७५—यह प्रश्न ३५ वें प्रश्न के समान है; इस

कारण इसका उत्तर वहां दे दिया गया। फिर भी इतना और जान लीजिये कि मोहनीय कर्म नष्ट हो जाने से अर्हन्त भगवान के किसी प्रकार की इच्छा (ख्वाहिश) नहीं रहती। उनका उपदेश अनक्षरात्मक होता है जो कि तीर्थङ्कर नामक कर्म के कारण वचनयोग बलसे होता है। कर्मवश बिना इच्छा के ही यह चमत्कारक उपदेश कार्य होता है। शेष ३५ वें उत्तर में देख लीजिये।

प्रश्न ७६—श्री ऋषभदेव के समय में कल्पवृक्ष क्यों नहीं रह गये थे।

प्रश्न ७७—उनसे पूर्व जब युगल अर्थात् एक लड़का और एक लड़की एक साथ ही उत्पन्न होते थे तो इनके समय में यह कार्य बन्द क्यों हो गया।

उत्तर ७६-७७—बहुत से पदार्थ, पेड़, पशु, पक्षी ऐसे होते हैं जो कभी किसी देश में पाये जाते हैं और कभी उस देश में उनका सर्वथा अभाव होजाता है। पहले भारतवर्ष में गजमोती (हाथी के मस्तक, से निकलने वाले मोती), नाग-मणि, अष्टापद, हंस, चकवा, चकवी, जलमानस, गरुड़, भेरुंड, कृष्ण रौदंती (छोटा पेड़) इत्यादि अनेक जानवर, पेड़, पक्षी, रत्न आदि पदार्थ पाये जाते थे, किन्तु अब उनके दर्शन भी दुर्लभ है। घूंस नामक जानवर कुछ दिन पहले मकानों में प्रायः सब जगह पाया जाता था; अब कहीं देखने में नहीं आता। तो इसके लिये 'क्यों, क्या' करके कुतर्क की

टांग तोडना व्यर्थ है। समयानुसार रद्दोबदल हुआ करती है इसमें आपकी 'क्यों' कुछ रुकावट नहीं डाल सकती। भगवान ऋषभदेव से पहले का समय भोगभूमिका था उस समय कल्पवृक्ष होते थे, पीछे कल्पवृक्ष रहने योग्य समय नहीं रहा जिससे कल्पवृक्षों का अभाव हो गया। जैसे आजकल नागमणि, हंस आदि पदार्थों का अभाव हो गया है।

इसी प्रकार युगल उत्पन्न होने के विषय में भी समझना चाहिये। प्राकृतिक बात में तर्क उठाना व्यर्थ है। जिन कारणों से इस समय अनेक स्त्रियों के युगल सन्तान पैदा होती है वैसे कारण भगवान ऋषभदेव से पहले विद्यमान थे जो कि पीछे नहीं रहे। इसमें आपकी 'क्यों' क्यों टकराती है।

प्रश्न ७८—श्री ऋषभदेवजी ने अपने पुत्र बाहुबलि को कामशास्त्र आदि विद्या सिखाई तो किस प्रकार सिखाई और क्या इससे पूर्व यह विद्या नहीं थी।

उत्तर ७८—स्वामी जी! प्रश्न भी अजब ढङ्ग से करते है क्योंकि उन्हें एक सौ प्रश्नों की संख्या पूरी करनी है।

कामशास्त्र, कामरत्न, कोकशास्त्र आदि ग्रन्थ बनाने वालों ने जिस प्रकार कामविद्या सिखलाई, इसी प्रकार भगवान ऋषभदेव ने अपने राज्यकाल में अपने पुत्रों को व अन्य लोगों को भी अनेक विद्याओं के साथ साथ कामशास्त्र सिखलाया इसमें 'किस प्रकार' की तर्क क्यों? स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में और आपके ईश्वर ने अपने ईश्वरत्व

में वेदद्वारा कैसी भद्दी तरहसे पुरुषोंको ही नहीं, किन्तु स्त्रियों को भी कामशास्त्र बतलाया है जो कि सिर्फ़ अश्लील ही नहीं किन्तु बिलकुल व्यर्थ है; कामशास्त्रके विरुद्ध भी है।

भगवान ऋषभदेवसे पहिले कामविद्या नहीं थी। सिर्फ़ विषयकर्म (मैथुन) का ही नाम कामविद्या नही है किन्तु यह विषय भी बहुत कुछ पढ़ने समझने योग्य है। जिसके अभाव से गृहस्थाश्रम बिगड़ते जारहे है।

प्रश्न ७६—भगवान ऋषभदेव ने दो कन्याओं से किस लिए विवाह किया? क्या इस कार्य को वे उचित समझते थे।

उत्तर ७६—जब कि एतरेय ब्राह्मण अ० ३३ ख० १ पेज ८३६ पर जिस को सनातनी वेद का एक अङ्ग मानते हैं और आर्यसमाजियों ने भी प्रमाण माना है राजा हरिश्चन्द्र की १०० स्त्रियों तक का वर्णन मिलता है तब स्वामी जी का भगवान् ऋषभदेव के, दो कन्याओं के साथ, विवाह करने पर आक्षेप करना कहां तक समुचित है, यह पाठक स्वयं विचार सकते हैं।

इस के अतिरिक्त एक बात यह भी है कि विवाह गृहस्थाश्रम चलानेके लिए किया जाता है। सो इसीलिये भगवान ऋषभदेव मे अपने पिता की सम्मति अनुसार दो कन्याओं से विवाह किया था। गृहस्थाश्रम में रहकर विवाह करना क्या अनुचित है? आप इस विषय में कोई शङ्का तो उठाते। भगवान ऋषभदेवने कोई अन्याय, अत्याचार, नियोग, वृद्धविवाह

आदि तो नहीं किया जिस से आप के विचार में यह ही प्रश्न उपज खड़ा हुआ।

प्रश्न ८० तथा ८२—जब एक चक्रवर्ती के ८४ लाख हाथी, ८४ लाख रथ, १८ करोड़ घोड़े, ८४ करोड़ गोशालाएं इत्यादि सम्पत्ति होती है तो यह ५०० धनुषका एक २ मनुष्य और कई मीलों का एक एक हाथी तथा घोड़े किन मकानों में रहते थे और हाथी आदि किस शाला में बंधते थे और जिस नगर वा देश में ये सब रहते थे वह कितना बड़ा था? क्या इसी विज्ञान पर अभिमान है? इस में भी नागरिक (प्रजा) और प्रजा के पशु आदि पृथक् ही थे।

प्रश्न ८२—सगर के ६०००० पुत्र जिनकी देह ४०० धनुष लम्बी थी वे किस मकान में रहते थे।

उत्तर ८०-८२—यहां भी पाठक महानुभाव देखलें कि प्रश्न दो कर दिये हैं; दोनों का अभिप्राय एक है। हमारी समझ से बुद्धिबल का इतना अतिप्रयोग नहीं होना चाहिये।

स्वामी जी जिस प्रकार पूर्वकालीन चक्रवर्तियों के विशालकाय मनुष्यों और सेना के हाथी घोड़ों की तरफ़ अपनी दृष्टि दौड़ाते हैं, उसी प्रकार यदि इस गये गुज़रे ज़माने के भी नागरिक रहन सहन को देखकर थोड़ा सा भी समझ लेते तो उन को यह शङ्का ही न उठती।

अमेरिका का प्रधान नगर न्यूयार्क तथा इङ्गलैन्ड का प्रधान नगर लन्दन इससे समय सबसे बड़े नगरहैं, इनकी मनु-

ष्यगणना ६०-६५ लाख है; यानी—६०-६५ लाख मनुष्य (गाय घोड़े, बकरी, मुर्गी आदि जानवरों के सिवाय) इन नगरों में रहते हैं। दिनके समय तो आसपास बाहरसे मज़दूर व्यापारी आदि इन नगरों में लगभग ४०-५० लाख और भी आजाते हैं अर्थात्—दिनके समय इन दोनों शहरों में एक करोड से भी अधिक मनुष्य रहते हैं। यदि इन नगरों का क्षेत्रफल फैलाकर इस १ करोड़ मनुष्योंके लिये स्थान का विभाग करे तो प्रत्येक मनुष्य के हिस्से में आधी फ़ीट ज़मीन भी नहीं आती है। यदि रातकी जनगणना ६० लाख के लिये स्थान बाँटने बैठें तो मुश्किल से पौन फ़िट ज़मीन प्रत्येक आदमी के हिस्से में आती है। बतलाइये इतनी छोटीसी ज़मीन में जब एक छोटासा बच्चा खड़ा भी नहीं हो सकता तब बड़े २ आदमी कहां तो बैठते होंगे, कहां खाते पीते सोते होंगे, कहां टट्टी पेशाब करते होंगे कहां उनके मोटर, साइकिल, घोड़े आदि ठहरते होंगे। तिस पर भी सड़क, रेलवे, ट्रामवे, पार्क (उद्यान), स्टेशन, टाउनहाल खेलने के मैदान आदि के लिये भी पर्याप्त स्थान उसी ज़मीन में से निकलता है। दूर न जाइये—आपके बंबई नगर का भी यही हाल है। यहां भी क्षेत्रफलके अनुसार बम्बई के आदमियों को एक वर्गफ़ीट ज़मीन प्रतिमनुष्य आती है और इन नगरों के आदमी इतने संकुचित स्थान में करते सब कुछ है, खाते पीते भी है, चलते फिरते भी हैं, टट्टी पेशाब भी करते है और खेलते कूदते भी हैं।

स्वामी जी महाराज ! आप तो करोड़ों वर्ष पहले की समस्या लेकर बैठे हैं। पहले आजकल सामने नज़र आनेवाली इन तीन नगरों की इस विकट समस्या को तो हल कीजिये। इस समस्या को हल करते ही आप की वह शङ्का कपूर की तरह उड़ जायगी। –

आजकल जैसे इन नगरों में अधिकांश सात २ मञ्जले और कोई कोई सोलह, तीस यहाँ तक कि उलवर्थ विल्डिङ्ग सरीखे ६४ खनके (मञ्जिल के) विशाल भवन बने हुए हैं और ८० खनके मकान तैयार हो रहे हैं। ज़मीन में एक दूसरे के नीचे तीन तीन रेलवे चलती है इत्यादि ढङ्ग से छोटे से क्षेत्र में इतने अधिक मनुष्य रह लेते हैं। ऐसा रहन सहन का ढङ्ग पहलेभी था। चौरासी चौरासी खनके आकाशचुम्बी विशाल मकान पहले भी बनाये जाते थे।

तथा—उन चक्रवर्ती राजाओंकी सारी सेना या सारा परिवार एक ही नगर में रहता था यह भी तो कहीं नहीं लिखा। सैकड़ों हज़ारों नगरों में रहते होंगे जैसे आज कल थोड़ीसी भी सरकारी सेना सैकड़ों जगह टुकड़े टुकड़े होकर फैली हुई है।

इस के सिवाय भारतवर्ष की सीमा भी आजकल की अपेक्षा बहुत अधिक थी।

इस कारण सगर चक्रवर्ती के विशालकाय पुत्रों का निवास तथा अन्य चक्रवर्तियों की सेना आदि मय प्रजा के

बहुत अच्छी तरह समा जाती थी, आप चिन्ता न कीजिये। आप का केसरगञ्ज इस कार्य के लिये नहीं लिया जायगा।

ये करोड़ों अरबों वर्ष पहले ज़माने की बात है, जब से कि बराबर शरीरका क़द घटता चला आरहा है। इस समय भी जब मनुष्य का प्रायः क़द ४॥ फ़ीट का होता है। हिमालय में मेंगू जाति के मनुष्य ८ फ़ीट से १२ फ़ीट तक ऊँचे होते हैं जिनके विषयमें सन् १६२६में अभ्युदय, श्रीकृष्णसंदेश आदि पत्रों में लेख प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रश्न ८१—एक चक्रवर्ती के ६६००० स्त्रियाँ होती हैं (इन की इतनी ही आवश्यकता है, नहीं तो जैन सम्राट् नहीं हो सकता), जिन का भोग एक ही समय में उतने ही शरीर बनाकर करता है (प्रश्न) इन शरीरों का आत्मा पृथक् पृथक् होता हैं अथवा एक ही ?

उत्तर ८१—राजाओं के अधिक स्त्रियां तो इस गये बीते ज़माने में भी है। वर्त्तमान महाराज के (धर्मपिता भूत॰ पूर्व महाराजा जयपुर के) लगभग ७०० स्त्रियां तो महल में रहती थीं और भी बहुत सी थीं। सबकी संख्या क़रीब तीन हजार बतलाई जाती है। लखनऊ के अन्तिम नवाब वाजिद अलीशाह के साढ़े तीन सौ से भी अधिक नवयुवती बेग़में थीं। इस कारण यूरोप, एशिया आदि पांच महाद्वीपों से भी लगभग छह गुनी पृथ्वी पर राज्य करने वाले चक्रवर्ती के ६६००० स्त्रियां हों, इस में क्या आश्चर्य है !

रही पृथक् शरीरों के आत्मा की बात; सो जैन सिद्धान्त में समुद्घात बतलाई है, जिस का अभिप्राय यह है कि कभी कभी इस आत्मा में ऐसी शक्ति प्रगट होती है कि वह मूल शरीर में रहता हुआ भी अपने कुछ प्रदेशों को उस मूल शरीर से बाहर भी निकाल देता है। कार्य हो जाने पर वे आत्मा के प्रदेश फिर उसी मूलशरीरमें आजाते हैं। वैक्रियिक नामक समुद्घात के प्रभाव से अनेक शरीर बन जाते हैं, जिन में रहते हुए आत्मा के प्रदेश मूल शरीर को भी नही छोड़ते। यही समुद्घात चक्रवर्ती को होती है। इस कारण उन सभी शरीरके भीतर एक ही आत्मा के प्रदेश होते हैं। अलग अलग आत्मा नहीं होता।

दृष्टान्त से यों समझ लीजिये कि कभी छिपकली की पूछ किसी तरह कट जाती है, तब उस छिपकली के आत्माके कुछ प्रदेश उस पूछ में भी कुछ समय के लिये रह जाते हैं। जिस से कि वह अलग कटी हुई पूंछ कुछ देर तक अलग तडफड़ाती रहती है। एक देवी के सामने चढ़ाने के लिये काटे हुए बकरे को हमने देखा था। उस का सिर अलग था जो कि मैं मैं चिल्ला रहा था और उसका कटा धड़ अलग तड़फड़ा रहा था, यह हालत तीन चार मिनट तक रही थी। अर्थात् उतनी देर तक एक आत्मा के प्रदेश अलग कटे हुए दोनों टुकड़ों में रहे। ऐसा ही चक्रवर्ती के शरीरों के लिये समझना चाहिए। आत्म-प्रदेशों का एक ही तांता सब शरीरों में लगा रहता है।

यही बात नहीं है कि चक्रवर्ती का एक समय अनेक शरीरों का बनाना युक्ति और दृष्टान्त से ही सिद्ध होता है, किन्तु स्वामी जी के प्रमाणभूत वेद भी इस बात का समर्थन करते हैं—

यदि संदेह हो तो ऋग्वेद मण्डल ३ सूक्त ६३ मन्त्र ८ को देख लीजिये। इसमें आमतौर से वर्णन किया गया है कि इन्द्र अपने शरीरको नाना प्रकारका बना लेता है तथा अपने शरीर में नाना शरीरों का निर्माण कर लेता है। इसही मंत्रका उल्लेख करते हुए निरुक्तकार यास्काचार्य ने लिखा है 'यद्यद्रूपं कामयते तद्देवता भवति" (निरुक्त अ० १० खं० १८)। जिस शक्तिके कारण देवता इस प्रकार का कार्य कर सके हैं उसही शक्ति का सद्भाव चक्रवर्ती में है। अतः उसमें भी एक समय अनेक शरीरोंकी रचनामें कोई आपत्ति उपस्थित नहीं की जासकती।

प्रश्न ८३-८४—सुभौम राजाके सन्मुख मरे हुए राजाओं के दांत भोजन के लिये क्यों रक्खे गये थे ? यह प्रथा किन लोगों में थी। ८३।

उन दांतों के चावल किस प्रकार हो गये; दृष्टान्त से सिद्ध करो। ८४।

उत्तर ८३-८४—परशुरामने क्षत्रिय जाति को भूमंडल से सर्वनाश करने के लिये क्षत्रियों का अनेक वार घोर संहार किया था, जिसमें सुभौम के पिताको भी मार दिया था। सुभौम का छिपकर अज्ञातरूप से पालन पोषण किया गया।

परशुराम ने किसी निमित्तज्ञानी से अपने मरण का निमित्त पूछा, निमित्तज्ञानी ने उसको बतलाया कि थाली में रक्खे हुए दांत जिस के सामने खीर हो जायँगे वह ही महाभाग्य तुझे मारेगा।

परशुराम अपने प्राणग्राहक की खोज चलाने के लिये लोगों को अपने घर भोजन कराया करता था। दांतों को थाली में रखकर सबको दिखलाता था। एक दिन वह नवयुवक सुभौम भी उसके घर भोजन करने आया। उसको जब थाली में रखकर वे दांत दिखलाये गये, तब वे निमित्तज्ञानी के कहे अनुसार खीर हो गये; और वह थाली चक्र हो गई। उस चक्र से उसी समय सुभौम ने परशुराम का शिर काट दिया। इस प्रकार यह कथा है।

दांत केवल इसलिये रक्खे गये थे कि परशुराम को अपने मारने वाले का निमित्तज्ञानी के कहे अनुसार पता चल जावे।

दांत सबके सामने रखने की उस समय कोई प्रथा नहीं थी; उपर्युक्त विशेष कारणवश केवल परशुराम ने ऐसा किया था।

उन दांतों के चावल (खीर) सुभौम के पुण्य प्रभाव से हो गये। पुण्यप्रभाव से या पापकर्मके प्रभावसे ऐसी आश्चर्यजनक घटनाएं हो जाया करती हैं।

आगरे ज़िलेके रहने वाले एक मनुष्य को हम जानते

हैं जो कि अभी १-२ वर्ष पीछे मरा है। उसके घर में पूर्वजों की पृथ्वी में गढ़ी हुई बहुत सम्पत्ति थी; किन्तु उसके पाप-कर्म के कारण उसको कुछ नहीं मिला। खोदने पर कोयले निकले। जब एक दूसरे साधारण गृहस्थ ने रहने के लिये उसका मकान किराये पर लिया; तब उसको चारों ओर से धन ही धन मिलने लगा। यहां तक कि उसको स्वप्न आये कि अमुक जगह पृथ्वी खोदो, तुम को बहुत धन मिलेगा। जिस स्थान पर खास गृहस्वामी को (मालिक मकान को) कोयले मिले थे उसको सोने से भरे हुए घड़े मिले और वह साधारण परिस्थिति वाला पुरुष मालामाल हो गया। उसने उसी धन से उसका मकान खरीद लिया। और वह मकान मालिक बिल्कुल निर्धन होकर दरदर का भिकारी हो कर बुरी तरह मरा।

कहिये पुण्य प्रताप से यदि वे दांत चावल हो गये तो कौनसी बड़ी बात है।

इसके अतिरिक्त एक बात यह भी है कि स्वामीजी ने वैदिक साहित्यको देखने की कोशिश नहीं की। यदि की होती तो अन्य शास्त्रों की तो बात ही क्या है, स्वयं वेदों में ही इस प्रकार के अनेक दृष्टान्त मिल जाते। अथर्ववेद-अ० ५ सूक्त १३ मंत्र ११ में विवस्वान् के पुत्र मनुजी का बछड़ा बनने का वर्णन मिलता है तथा अथर्ववेद अ० ५ सू० १३ मं० २ में प्रह्लाद के पुत्र खरेचम का बछड़ा बनने का वर्णन मिलता है

और अथर्ववेद अ० ५ सु० १२ मन्त्र ५ में इन्द्र के बछड़ा बनने का वर्णन मिलता है। जबकि इस प्रकार की अवस्थायें हो सकती हैं या स्वामी जी महाराज सभी अवस्थाओं के होने को प्रमाण मानते हैं तब चावलों के बनने के सम्बन्ध में प्रश्न उपस्थित करना व्यर्थ समय का बरबाद करना और कराना नहीं तो क्या है?

प्रश्न ८५—प्रतिनारायण जब विषयभोग के कारण नर्क में जाते है तो आगे उनकी मुक्ति हो जावेगी, इसमें क्या प्रमाण है?

उत्तर ८५—जो मनुष्य एक बार कोई बुरा कार्य करके कोई कड़ा दण्ड पावे तो क्या यह बात असंभव है कि वह फिर अपना आचरण सुधार कर आदर्श सदाचारी नहीं बन सकता? वाशिंगटनमें बहुत से ऐसे ऐतिहासिक पुरुष हुए हैं जो अपनी नीच दशा से उन्नति करके जगतपूज्य हो चुके हैं। अनेक प्रतिनारायण नरक से निकल कर मुक्ति जा चुके हैं। सर्वज्ञ अर्हन्त भगवान ने भी यही बतलाया है कि प्रतिनारायण नरकसे निकल कर भवान्तर में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र प्राप्त करके मुक्ति जावेंगे। इस कारण आपकी शङ्का निर्मूल है।

प्रश्न ८६—जब आपके यहां युवा विवाह युगाकाल ही में लिखा है तो आजकल बालकों का विवाह करके क्यों

पाप करते हो ? देखो-उत्तरपुराण पर्व ७५, इसी प्रकार और भी ग्रन्थों में देखलें।

उत्तर ८६—बालविवाह करना जैनसमाज का कोई नियम नहीं है और न अधिकांश होते ही हैं, जो कोई बाल-विवाह करते हैं वे भूल करते हैं। विवाह के बाद तीन वर्ष पीछे गौना करने की रीति बहुत जगह है। कुछ लोग उस समय के ख़याल से भी लड़कों का विवाह कर देते होंगे। जैनसभाओं की ओर से बालविवाह का निषेध होता रहता है, फिर भी जो करे वह उसका स्वयं उत्तरदायी है। इसका उत्तर आप समस्त जैनियों से नहीं मांग सकते।

आपही बतलाइये कि जब आर्यसमाज के जन्मदाता स्वामी दयानन्द जी दूसरे पति के साथ विवाह करने की इच्छुक निःसन्तान विधवाको विवाह करनेकी आज्ञा दे गये हैं तब प्रसिद्ध आर्यसमाजी अपनी बाल विधवा पुत्री व बहिनोंका विवाह क्यों नहीं करते हैं ? स्वामीजी के लिखे अनुसार अब तक कितने आर्यसमाजी स्त्री पुरुषों ने नियोग करके सन्तानें पैदा की हैं ? मांसभक्षण का निषेध होने पर भी हज़ारों आर्यसमाजी मांस क्यों खाते हैं ?

आप प्रश्न भी बहुत मार्के का करते हैं और अपने चेहरे को भी शीशे में नहीं देखते।

प्रश्न ८७—पूर्व समय में जब समुद्रयात्रा करने का

विधान है तो अब क्यों नहीं करते ? देखो-उत्तरपुराण पर्व ७५-७६ ।

उत्तर ८७—कौन कहता है कि ज़रूरत के समय जैन-लोग समुद्रयात्रा नहीं करते ? न मालूम स्वामीजी महाराजको इस बात का दिव्यदर्शन कहां से होगया ? शायद सनातनियों के सम्बन्ध में स्वामीजी की इस बात की धारणा होगी और प्रश्न लिखते समय आपको नाम याद नहीं आया है। दोष तो था अपनी स्मृति का, किन्तु धावा कर डाला जैनियों पर।

अब भी जैनियों के जैनबद्री आदिक ऐसे अनेक तीर्थस्थान हैं जहां रेल और जहाज़ दोनों जातेहैं, किन्तु अधिकांश जैन रेल की बजाय जहाज़ द्वारा जाना पसन्द करते हैं; फिर भी उनके सम्बन्ध में इस प्रकार का प्रश्न उपस्थित करना व्यर्थ प्रलाप-मात्र नहीं तो क्या है ? इसके अतिरिक्त अब भी जैनियों में अनेक सिविलियन और उनके बैरिस्टर मौजूद हैं तो क्या स्वामीजी के ध्यान में ये बग़ैर समुद्रयात्रा के ही होगये थे ? धन्य है स्वामीजी की बुद्धि को !

प्रश्न ८८—पशु पक्षियों ने अक्षर किस प्रकार सीख लिये थे और अब क्यों नहीं सीख सकते। उत्तर पुराण पर्व ७५ श्लोक ४५८ ।

उत्तर ८८—भारतवर्ष में तोता और मैना प्राचीन-काल से पढ़ते हुए चले आ रहे हैं। जो तोता या मैना जितना अधिक पढ़ा हुआ होता है, उसका मूल्य उतना ही अधिक

होता है। कादम्बरी ग्रन्थ देखिये-तोते ने कथा कहने में किस प्रकार कमाल किया। शंकराचार्यके समकालीन प्रसिद्ध विद्वान मंडनमिश्र के तोता मैना आपस में शास्त्रार्थ किया करते थे। उसके मकान का चिन्ह ही यह था कि जहांपर—

'स्वत. प्रमाणं परत प्रमाणं, शुकाङ्गना यत्रहि सवदन्ति'। वेद स्वतः प्रमाणरूप हैं या परतः प्रमाणरूप हैं इत्यादि तार्किक युक्तियों से जिस घरके दरवाज़े पर तोता और मैना आपस में विवाद कर रहे हों वह घर 'मंडनमिश्र' का है।

इस समय भी बहुत से आदमी तोता, मैना को पढ़ा पढ़ा कर बेचा करते हैं। इस कारण आपका प्रश्न निःसार ठहरता है।

प्रश्न ८९—जम्बूद्वीप का व्यास एक लाख योजन का है और उसके चारों ओर समुद्र है जो २ लाख योजन चौड़ा है। पुनः उसके चारों ओर धातुखंड पुनः उसके पश्चात समुद्र इस प्रकार असंख्यात समुद्र, द्वीप हैं जो एक दूसरे से द्विगुने चौड़े या व्यास में है। प्रश्न-इसका नक़्शा भी आपके शास्त्रकारों ने उतारा है या नहीं (यहां ४ कोस का एक योजन ५०० कोस के बराबर आपका एक कोस है)

उत्तर ८९—हां! हमारे शास्त्रकारों ने ढाईद्वीप या तेरह द्वीपका नक़्शा उतारा है। इसके आगेका विशेष नक़्शा न उतार कर मध्य लोक का ऊर्ध्व, अधोलोक का सामान्य नक़्शा भी स्केल के अनुसार उतारा है। स्केल के अनुसार

प्रत्येक द्वीप समुद्र का नक़शा उतरना असंभव है। भले ही जम्बूद्वीप को चौथाई इंच का रखकर आगे चलिये। और फिर असंख्यात द्वीप समुद्रों की अङ्कों द्वारा गणना भी नहीं हो सकती।

स्वामी दयानंद जी तथा आर्यसमाजी आजकल के भूगोल पर लट्टू हैं, सो एकतो यह भूगोल स्वामी दयानन्द कृतभाष्य यजुर्वेद अध्याय १६ मंत्र ५५ के अनुसार यह लोक (जगत) असंख्यात योजन लंबा चौड़ा होने से वेदविरुद्ध है; इस कारण वेदों को प्रमाण मानते हुए आप तो कुछ बोल नहीं सकते। इस असंख्यात योजन लंबाई चौड़ाई वाले (जिसके योजनों की गणना न हो सके) जगत का आपने या स्वामी दयानन्द जी अथवा अन्य किसी आर्यसमाजी ने जैन-शास्त्रकारोंके द्वारा खींचे हुए नकशे के हज़ारवें हिस्से भी कोई नक़शा खींचकर दिखलाया है या सिर्फ़ थोथी बातें ही हैं।

दूसरे आजकल का भूगोल भी अपूर्ण है; जैसा कि यूरोप के भिन्न २ विद्वान समय समय पर युक्तिपूर्वक अपना मतभेद प्रगट करते रहते हैं। पहले अपना घर देखकर पीछे दूसरे की ओर दृष्टि डालनी चाहिये।

प्रश्न ६०—मध्यलोकमें दो प्रकारकी व्यवस्था है; कहीं कर्मभूमि और कहीं भोगभूमि। जहां कल्पवृक्षों द्वारा सब भोगपदार्थ मिल जावें, अर्थात् कपड़ा रोटी शाक मिठाई आदि सब कुछ बना बनाया मिल जावे, वहभी वृक्षों द्वारा; उसे भोग

भूमि कहते हैं। प्रश्न—इस का ठीक २ पता क्यों नहीं बता देते, जिस से दुनिया का दुःख ही दूर हो जावे।

उत्तर ६०—आप का प्रश्न यदि केवल भोगभूमि का पता जानने से ही है तो बिलकुल ठीक पता लीजिए। साहस और शक्ति हो तो कम से कम आप तो हो ही आइये।

भोगभूमि यहां से ठीक सीधी उत्तर दिशा में है। आप हवाई जहाज या पैदल जैसे जाना चाहें सीधे उत्तर दिशाकी ओर चल दीजिये।

जब आप करीब एक लाख मीलसे ज़्यादा चले जायँगे तब रास्ते में दो बड़े बड़े वैताढय और हिमवन पर्वत आवेंगे उस के बाद हैमवत क्षेत्र की भोगभूमि में आप पहुंच जावेंगे। आप यहां से बहुत कुछ यहांकी वायु साथ लेते जाना; शायद मार्ग की वायु आपके लिये अनुकूल न हो।

प्रश्न ६१—जहां जल होता है वहां जलचर क्यों नही उत्पन्न होते ?

उत्तर ६१—जहां जल होता है वहां कहीं कहीं तो मछली आदि जलचर जीव होते हैं, कहीं २ पर नहीं भी होते; जैसे राजगृही में जो कि पटनाके पास है स्वाभाविक गर्मजल के कई कुण्ड विद्यमान हैं, उनमें मछली आदि कोई भी जल-चर जीव पैदा नहीं होता। इसी प्रकार जहां पर जिस जलमें कोई विशेष बात होती है वहां पर जलचर जीव जीवित नहीं रह सकते इसीकारण वहां कोईभी जलचर जीव नहीं होता।

प्रश्न ९२---इस पैंतालीस लाख योजन (एक योजन २००० कोस का) भूमि के क्षेत्र में ही मनुष्य की मुक्ति क्यों हो सकती है, इस से बाहर के मनुष्यों की क्यों नहीं हो सकती ?

उत्तर ९२—मनुष्य जब कि पैंतालीस लाख योजन लम्बे चौड़े क्षेत्रके बाहर रहते ही नही है तो वहां से मुक्ति ही किस की होगी ? प्रश्न करने से पहले कमसे कम कुछ थोड़ी बहुत जानकारी रखनी चाहिए; बिना जाने बूझे अन्धाधुन्ध प्रश्न ठोंक देना अच्छा नहीं।

पैंतालीस लाख योजन से बाहर का जयवायु प्रकृति मनुष्यों के अनुकूल नहीं; इस कारण न तो वहां कोई मनुष्य रहता है और न इसीलिये वहां से किसी की मुक्ति होती है।

प्रश्न ९३—श्री, ह्री, धृति, कीर्त्ति, बुद्धि (लक्ष्मी) इन का परिवार कौनसा है जिन के सहित ये छ द्वीपों में रहती है, और किस प्रकार रहती हैं ?

उत्तर ९३—श्री, ह्री आदि ६ देवियां ६ द्वीपों में रहती हैं, यह आपने कहां से जाना ? कम से कम प्रश्न करने के लिये तो आप को जानना आवश्यक था कि वे कहां रहती हैं ?

ये छः देवियां ६ कुलाचल पर्वतों पर (जो कि जम्बूद्वीप में हैं, धात की खण्ड और पुष्करार्द्धद्वीप में भी हैं) कुंडों के बीच कमलाकार भूमिपर बने हुए प्रासादों में रहती हैं। इन का परिवार अपने सामानिक तथा सभासद् देवों का

है। यानी—वे सामानिक तथा सभासद् देवों के साथ अपने अपने कुंड में रहती हैं।

प्रश्न ६४—महागङ्गा व महासिन्धु की परिवार-नदियाँ प्रत्येक की चौदह चौदह हज़ार हैं। रोहित रोहितास्या की अट्ठाईस २ हज़ार, हरित हरिकान्ताकी छप्पन २ हज़ार, सीता सीतोदा की एक लाख बारा हज़ार प्रत्येक को नदियां हैं। प्रश्न, इस प्रकार आपके शास्त्रों में कितनी नदियों का वर्णन है और ये नदियां किस २ स्थान पर हैं ?

उत्तर ६४—हमारे शास्त्रों में ऐसी बहुत सी नदियोंका वर्णन है और ये नदियां भरत, हैमवत, हरि, विदेह आदि क्षेत्रों में या जम्बूद्वीप आदि द्वीपोंमें पाई जाती हैं। महागङ्गा, महासिन्धु आदि जो बडी बड़ी नदियां हैं वे तो पहाड़ों से निकल कर समुद्रों में जा मिली हैं और जो छोटी छोटी सहायक नदी हैं वे किसी झील आदि से निकल कर बड़ी नदियों में मिल गई है।

प्रश्न ६५—महागङ्गा नदी के निकास की चौड़ाई ६। योजन और समुद्र में मिलते समय ६२॥ योजन हो जाती है। क्या यह प्रत्यक्ष के विरुद्ध नहीं है और पर्वत परसे गिरने के समय १० योजन चौड़ाई कैसे सिद्ध करते हो ?

उत्तर ६५—स्वामी जी महाराज! आप अपने प्रत्यक्ष को हिमालय पर्वत से ज़रा दूर बढ़ा ले जाइये। क्योंकि जिस गङ्गाके विषय में आप प्रश्न कर रहे है वह गंगा इस भारतवर्ष

की गंगा से जुदी ही बहुत बड़ी नदी है । वह गंगा नदी हिमवन पर्वत के पद्म नामक कुंडसे निकली है और पूर्व दिशा की ओर बहकर लवण समुद्र में मिली है। आप उसको प्रत्यक्ष करके विरुद्ध अविरुद्ध ठहरावें; बिना कुछ देखे भाले आपका प्रत्यक्ष भी कोई अलौकिक प्रत्यक्ष है।

प्रश्न ६६—देवकुरु और उत्तरकुरु में हमेशा भोगभूमि रहती है। वहां के निवासी अमृतमय अल्प भोजन करते हैं। यह सब भोजनादि पदार्थ भी वृक्षों से प्राप्त होजाते हैं। इन बातों को आप किस प्रमाण द्वारा सिद्ध करते हैं?

उत्तर ६६—हमको यहां परभी भोजन पदार्थ फल, फूल, अन्न, मेवा, पत्र, दूध आदि वृक्षों से मिलते हैं, वस्त्रों के लिये सूत भी वृक्ष देते हैं, मकान के लिये लकड़ी आदि भी वृक्षों से प्राप्त होती है, प्रकाश करने के लिये तेल भी पेड़ ही देते हैं, फूल, धूप, तगर, चन्दन आदि सुगन्धित वस्तुएँ भी वृक्षों से मिलती है। इत्यादि अनेक प्रकार के हमारे भोग उपभोग के साधन वृक्षों से मिलते रहते हैं। देवकुरु उत्तरकुरु में यहां से और भी बढ़ चढ़कर दूसरे प्रकार के वृक्ष हैं जिनसे भोजन आदि पदार्थ वहां रहने वालों को मिल जाते हैं।

इस कारण यह बात अनुमान से सिद्ध होती है। तथा हम स्वामीजी से ही पूंछते हैं कि आप वहां इस प्रकार की व्यवस्थाका निषेध किस तरह करते हैं? प्रत्यक्षसे तो कर नहीं सकते, क्योंकि आपको उस क्षेत्र का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं और जब

प्रत्यक्ष नहीं तब आपके मतानुसार अनुमान भी नहीं हो सका। अतः स्पष्ट है कि देवकुरु के विषय में जैसा उल्लेख है वह सब ठीक है।

प्रश्न ६७-६८—सूर्य चन्द्र नक्षत्र तारे आदि के रहनेके विमान किस वस्तु के बने हैं और ये सब मेरू की प्रदक्षिणा करते रहते हैं, इसमें क्या प्रमाण है ?

उत्तर ६७-६८—सूर्य चन्द्र आदि के विमान स्फटिक आदि चमकीले पत्थर के बने हुए हैं जो कि अच्छा प्रकाश देते हैं। दिनमें सूर्य का प्रकाश होता है जो कि पूर्व दिशा से उदय होकर पश्चिम दिशा में अस्त होजाता है; यह हम प्रत्यक्ष देखते हैं। इस कारण अनुमान होता है कि सूर्य चन्द्र आदि मेरु की प्रदक्षिणा करते हैं क्योंकि पूर्वदिशा से पश्चिम दिशा की ओर गोल रूपसे प्रतिदिन गमन करते हैं।

पृथ्वी के स्थिर होने पर दिन रात का होना बिना सूर्य चन्द्र आदि के गोलाकार घूमे बन नहीं सकता। अब कुछ यूरोप के विद्वान भी पृथ्वी को थाली समान गोल और स्थिर तथा सूर्य को घूमता हुआ मानने लगे हैं।

वेदों के हामी तथा स्वामी दयानन्द भाष्य को अक्षरशः सत्य समझने वाले आप सरीखे आर्यसमाजी सन्यासियों को बिना कुछ हीला हुज्जत के स्वीकार करना चाहिये कि पृथ्वी स्थिर और सूर्य घूमता है। देखिये अपना यजुर्वेद अध्याय ३३ मंत्र ३१ (आ कृष्णेन आदि) तथा मंत्र ३४ (प्र वावृजे आदि)।

इस कारण सूर्य का घूमना हम आपके वेदों से भी सिद्ध करते हैं।

प्रश्न ६६—सूर्य अधिक ऊंचा है या चन्द्रमा। और इनकी लम्बाई चौड़ाई के विषय में जो आपके यहां विज्ञान भरा पड़ा है उसको आजकल के तत्ववेत्ताओं के सन्मुख रखकर उनको सहायता क्यों नहीं देते हैं?

उत्तर ६६—सूर्य नीचा है और चन्द्रमा उससे ऊंचा है। हम ज्योतिष विषय के तत्ववेत्ताओं को क्यों नहीं बतलाते? यह तो सामाजिक प्रश्न हुआ। जैनसमाज धार्मिक प्रचार में बहुत पीछे है जैसा उसका सत्य, स्पष्ट तात्विक विज्ञान है उसी तरह यदि इसके प्रचार में अधिक योग दिया जावे तो इसमें भी सन्देह नहीं कि यह धर्मनिष्पक्ष बुद्धिमान मानव समाज का विश्वधर्म हो सकता है। किन्तु खेद है कि जैनसमाज अन्य झगड़े झंझटों में फंसा हुआ इस ओर बिलकुल योग नहीं दे रहा। मानो पहले ज़माने में अच्छा प्रचार करके थकावट मिटाने के लिये सो रहा है।

किन्तु—हम आपसे ही पूछते हैं कि आपने वेदों में भरे हुए विज्ञान भण्डार को कितना फैलाया है? फ़ीसदी ५ ही आर्यसमाजी ऐसे होंगे जो वेदों का अध्ययन करके उसका भाव समझते हैं; शेष आर्यसमाजी तो यह भी नहीं जानते कि वेद कितने लम्बे चौड़े मोटे हैं, उनमें क्या कुछ लिखा है? आर्यसमाज के बड़े बड़े लीडरों, वकीलों को भी यह

ही दशा है। बिना जाने बूझे देखे समझे "वेद ईश्वरीय ज्ञान है, समस्त विद्याओं का भंडार है, मुक्ति वेदों के द्वारा ही मिलेगी" इत्यादि कहते रहना क्या अन्धपरम्परा नहीं है? क्या आपभी हमारे इस प्रश्न का उत्तर देंगे?

प्रश्न १००—पैंतालीस लाख योजन चौड़ी अर्धचन्द्राकार जो सिद्ध शिला है वह किसके आसरे से ऊपर ठहरी हुई है।

उत्तर १००—सिद्धशिला तो वायुमंडल के आधार पर ठहरी हुई है। ज़रा भी हिलती डुलती नहीं है। किन्तु आपका यजुर्वेद (अध्याय १६ मंत्र ५५) के अनुसार जो असंख्य योजन लम्बा चौड़ा भूमंडल है वह किसके सहारे ठहरा हुआ है। आधुनिक भूगोलवादियों की बतलाई हुई आकर्षण शक्ति से आप अपना पिंड नहीं छुडा सकते क्योंकि उनकी बतलाई हुई आकर्षणशक्ति के लिये भूमंडल भी कुछ एक हज़ार मील व्यास वाला छोटा सा है। आपका भूमंडल हज़ारों लाखों करोडों अरबों ही नहीं और असंख्य मील भी नहीं किन्तु असंख्य योजन (८ मील का एक योजन) लंबा चौड़ा है। ऐसा बड़ा भारी भूमंडल किस आधार पर ठहरा हुआ है सो तो कृपया आप बतलावें।

शुभमस्तु सर्वजगतः।

"श्री चम्पावती जैन पुस्तकमाला" की

उपयोगी पुस्तकें

(१) जैनधर्म परिचय—सत्यार्थदर्पण और जैनदर्शन आदि के लेखक, जैनगजट के भूतपूर्व सम्पादक पं० अजित-कुमार जी शास्त्री इसके लेखक हैं। पृष्ठ संख्या क़रीब पचास के है। लेखक ने जैनधर्म के चारों अनुयोगों को इसमें संक्षेप में बतलाया है। जैनधर्म के साधारण ज्ञान के लिये यह बहुत उपयोगी है। मूल्य केवल ~)॥

(२) जैनमत नास्तिक मत नहीं है—यह मि० हर्बर्ट वारन के एक अङ्गरेज़ी लेख का अनुवाद हैं। इसमें जैनधर्म को नास्तिक बतलाने वालों के प्रत्येक आक्षेप का उत्तर लेखक ने बड़ी योग्यता से दिया है। मूल्य केवल)॥

(३) क्या आर्यसमाजी वेदानुयायी हैं?—इसके लेखक पं० राजेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ हैं। इसमें लेखक ने आर्यसमाजियों के अनादि पदार्थों के सिद्धान्त, मुक्तिसिद्धान्त, ईश्वर का निमित्तकारण और सृष्टिक्रम व ईश्वरस्वरूप को बड़ी स्पष्टरीति से वेद-विरुद्ध प्रमाणित किया है। पृष्ठ संख्या ७४। कागज़ बढ़िया। मूल्य केवल ~)

(४) वेदमीमांसा—यह पं० पुत्तूलाल जी कृत प्रसिद्ध पुस्तक है। पुस्तकमाला ने इसको प्रचारार्थ पुनः प्रकाशित किया है। मूल्य छः आने से कम करके केवल =) रक्खा है।

(५) अहिंसा—इसके लेखक पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री धर्माध्यापक स्याद्वाद विद्यालय काशी हैं। लेखक ने बड़ी ही योग्यता से जैनधर्म के अहिंसा सिद्धान्तको समझाते हुए उन आक्षेपों का उत्तर दिया है जोकि विधर्मियों की तरफ़ से जैनियों पर होते हैं। पृ० संख्या ५२। मूल्य केवल ~)॥

श्रीऋषभदेवजी की उत्पत्ति असंभव नहीं है !—इसके लेखक बा० कामताप्रसाद जैन M. R. A. S. हैं। यह आर्यसमाजियों के "श्रीऋषभदेव जी की उत्पत्ति असम्भव है" ट्रैक्ट का उत्तर है। पृष्ठ संख्या ८४; मूल्य ।)

(७) वेद-समालोचना—इसके लेखक पं० राजेन्द्रकुमारजी न्यायतीर्थ हैं। लेखक ने इस पुस्तकमें, अशरीरी होने से ईश्वर वेदों को नहीं बना सकता; वेदों में असम्भव बातों का, परस्पर विरुद्ध बातों का, अश्लील, हिंसा विधान, मांसभक्षण समर्थन, असम्बद्ध कथन, इतिहास, व्यर्थ प्रार्थनायें और ईश्वर का अन्य पुरुष से ग्रहण आदि कथन है; आदि विषयों पर गम्भीर विवेचन किया है। पुस्तक की पृष्ठ संख्या १२४ है। मूल्य केवल ।=)

(८) आर्यसमाजियों की गप्पाष्टक—लेखक श्री प० अजितकुमार जी. मुलतान। विषय नाम से प्रकट है। मूल्य)॥

(६) सत्यार्थ दर्पण—लेखक पं० अजितकुमार जी मुलताननगर। हमारे यहां से यह पुस्तक दूसरीवार आवश्यक परिवर्तन करके ३५० पृष्ठों में छापी गई है। इसमें सत्यार्थ-प्रकाश के १२ वें समुल्लास का भली प्रकार खंडन किया गया है। प्रचार करने योग्य है लागतमात्र मूल्य ॥।)

(१०) आर्यसमाज के १०० प्रश्नों का उत्तर—लेखक उपरोक्त। विषय नामसे प्रकट है। पृष्ठ सख्या १००। मूल्य ≡)

(११) क्या वेद भगवद्वाणी है ?—लेखक—श्रीयुत् सोऽहं शर्मा। विषय नामसे प्रकट है। मूल्य -)

नोट—इनके अतिरिक्त अन्य पुस्तकें भी शीघ्र प्रकाशित की जायँगी। समाज के श्रीमानों को चाहिये कि इनका प्रचार देश और विदेश में करें।

—प्रकाशक।